7-9

॥ श्रीः ॥

युगपरिवर्तन

(कब, कैसे और कैसा होगा ?)

पं० श्रीकाशीनाथ झा

विद्यालङ्कार ।



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१



॥ श्रीः ॥

युगपरिवर्तन

(कब, कैसे और कैसा होगा ?)

सम्पादकः—

पं० श्रीकाशीनाथ झा, विद्यालङ्कार

प्रधानाचार्य,

रानी चन्द्रावती श्यामा महाविद्यालय,

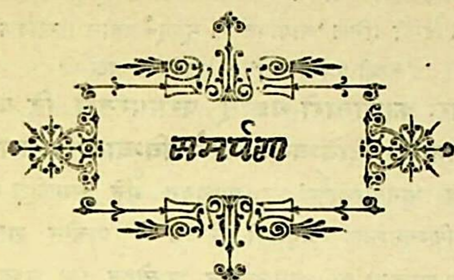
वाराणसी

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

वि० सं० २०१६] मूल्य १-५० [१९५९ ई०

प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
प्रथम संस्करण, संवत् २०१६

The Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk, Varanasi-1 (India)
1959



समर्पण

श्रोत्रियकुलावतंस

महानुभाव

श्रीमान् आदित्यनाथ झा आइ. सी. एस.

उपकुलपति,

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय

के

करकमलों

में

सादर समर्पित।

अभ्युदयाकांक्षी

श्रीकाशीनाथ झा

प्राक्कथन

पं० श्री दिनेशदत्त झा

(काशी के सुप्रसिद्ध हिन्दी दैनिक 'आज' पत्रिका के भूतपूर्व सहायक सम्पादक,
पटने के हिन्दी दैनिक 'आर्यावर्त' के भूतपूर्व प्रधान सम्पादक तथा
'काशी पत्रकारसंघ' के भूतपूर्व अध्यक्ष ।)

परः कालात्परो यज्ञात् परात्परतरो हि यः ।
अनादिरादिविश्वस्य तस्मै विश्वात्मने नमः ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ 'युगपरिवर्तन' का अध्ययन मैंने समाहित मन से साद्यन्त किया है। तत्त्वचिन्तनशील अनुभवी लेखक ने प्राचीन शास्त्र-पुराणों तथा प्रचलित सामयिक साहित्य का अनुसन्धान, आलोड़न तथा अध्ययन कर गम्भीर गवेषणापूर्वक जिन तथ्यों का संग्रन्थन किया है वे अखिल विश्व से सम्बन्ध रखनेवाले हैं तथा समस्त मानव समाज के लिए विचारणीय हैं। विद्वान् लेखक का यह प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है।

विश्व की वर्तमान प्रवृत्ति तथा प्रवाह पर ध्यान रखनेवालों को युग के परिवर्तन की आसन्नता स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। आसुरभाव की अति प्रबलता सर्वत्र देखने-सुनने में आ रही है। परस्व तथा पराधिकार के अपहरण से सर्वत्र त्राहि-त्राहि की पुकार होने लगी है। आसुरभाव से मदमत्त समूह ईश्वरीय सत्ता को ही चुनौती देने लगा है, समस्त सृष्टि को ही ध्वस्त कर देने पर तुल गया है। स्थल, वन, पर्वत, नदी, समुद्र, अग्नि, विद्युत्, पवन आदि स्थूल विषयों को आयत्त कर चुकने पर अब अन्तरिक्ष पर भी अधिकार करने की चेष्टा होने लगी है। अब सूर्य, चन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि के अधिकारक्षेत्रों को भी आयत्त करने का पागलपन होने लग गया है। एक-एक क्षेप्यास्त्र के प्रयोग से समुद्रगर्भ के अनन्त प्राणियों का संहार होने लगा है। परिणामतः प्रकृति का प्रकोप भी बढ़ता जा रहा है। सर्वत्र विनाश तथा ध्वंस के भीषण दृश्य उपस्थित हो रहे हैं। सर्वत्र हाहाकार सुनाई पड़ रहा है। विश्वात्मा क्षुब्ध हो उठा है। युगपरिवर्तन अब नहीं तो कब होगा ?

कालचक्र के अन्तर्गत युगचक्र चलता ही रहता है। परन्तु प्रत्येक युग-परिवर्तन एक जैसा नहीं होता। उसमें तारतम्य हुआ करता है। तत्त्वज्ञों को इसका आभास मिल रहा है कि इस बार का युगपरिवर्तन अभूतपूर्व होगा। वह कब, कैसे और कैसा होगा इसी का विशद विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। परिवर्तन का काल अति निकट है। अगले ही वर्ष वह आरम्भ हो जायगा। सन् १९६२ ईसवी के आरम्भ में तो वह चरम सीमा पर पहुँचकर

अति भीषण रूप धारण करेगा। समस्त प्रकृति वैसे ही परिपीड़ित होगी जैसे सन्तान प्रसव के पूर्व जननी होती है। पश्चात् शान्ति का प्रसव होगा, विश्व का क्रम सुव्यवस्थित हो जायगा।

शास्त्र-पुराण माननेवाले भारतीयों की यह धारणा है कि युगपरिवर्तन में अभी लाखों वर्षों का विलम्ब है। भारत के शास्त्र-पुराणों में युगों की कालावधि की गणना के विषय में बहुत बड़ी भ्रान्ति का पोषण शताब्दियों से होता आ रहा है जिसकी ओर ध्यान दिलाकर विद्वान् लेखक ने भारत के विद्वत्समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है। इस विषय के विवेचन में जिन तर्कों, युक्तियों तथा प्रमाणों का उपयोग इस ग्रन्थ में किया गया है वे सर्वथा शास्त्रसम्मत अतएव अखंडनीय हैं। विद्वत्समाज को उस पर सम्यक् विचार कर्त्तव्य है। गतानुगतिक परम्परा के ही कारण इस भ्रान्ति का पोषण अवतक होता आ रहा है। वह भ्रान्ति है—मानव-वर्ष के तीन सौ साठ मानवदिनों के सदृश देवताओं के भी तीन सौ साठ देवदिनों को दिव्य वर्ष मान लेना। देवताओं के तो एक ही दिन और रात में मनुष्यों का एक वर्ष पूरा हो जाता है। देवताओं के काल की गणना के क्रम में सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष आदि का कहीं कोई उल्लेख शास्त्र में नहीं, केवल युगमात्र का उल्लेख है जो मानव-चतुर्युगों अर्थात् बारह हजार वर्षों का हुआ करता है। हमारे चतुर्युग तो केवल द्वादश सहस्र वर्षों के ही हुआ करते हैं। परन्तु भ्रान्तिवश देवदिन से देववर्ष बनाकर उसके अनुसार हमारे युगों का मान तीन सौ साठ गुणा अधिक अर्थात् तेंतालीस लाख बीस हजार वर्ष बना दिया गया! इसी भ्रान्ति के वश हम इस मोह में पड़े हैं कि हमारे चतुर्युगों का अन्त होने में अभी लाखों वर्षों का विलम्ब है। इस भ्रम का निवारण इस ग्रन्थ में शास्त्र-पुराणों के प्रबल प्रमाणोंद्वारा सुचारु रूप से किया गया है। अब भी इस ओर विद्वत्समाज का ध्यान जाय तो लोगों का बहुत बड़ा मोह दूर होने में बड़ी सहायता मिले।

युगपरिवर्तन के पश्चात् तत्त्वज्ञों को विश्व के जिस चिन्मयरूप का आभास मिला है उसकी कल्पना भी आसुरसमूहों से प्रपीड़ित साधारण समाज के लिए सुखद है। विश्वात्मा विश्वनाथ विश्व को उसी सच्चिदानन्दरूप में सुप्रतिष्ठित करें।

युगेष्वावर्तमानेषु मासर्त्वयनहायनैः।
सर्गप्रलययोः कर्त्रे तस्मै कालात्मने नमः॥

५, नीची ब्रह्मपुरी काशी
२१-७-१९५९ ई०

श्री दिनेशदत्त झा

भूमिका

संसार में अभी वस्तुतः विचित्र उथल-पुथल सी देखने में आ रही है। कोई भी मनुष्य सुखशान्ति का अनुभव नहीं कर पा रहा है। इसके अनेक कारण हैं। आजकल संसार के मानव समाज की नैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था का चरम अधःपतन हो गया है, किन्तु उसके सुधार का कोई उपाय या लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है

संसार का अर्थ है—सं-सम्यक् प्रकार से, सरति—चलता है। जैसा अंग्रेजी में भी कहा गया है—'The world is a mass of change'—अर्थात् संसार प्रतिक्षण प्रगतिशील तथा निरन्तर बदलने वाला है। इसकी उपपत्ति यों है कि इसके मूलकारण—उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय ये तीनों काल की अवस्थाएँ हैं जो सर्वदा परिवर्त्तन रूप से प्रतीत होती हैं। उपर्युक्त अधः-पतन उक्त काल की इदानीं (अभी) तीसरी अवस्था अर्थात् प्रलय का सूचक है। इस प्रलय अथवा ध्वंसकारी लीला के विषय में अनेकानेक सूत्रों से भविष्यवाणियों की प्रगल्भ घोषणाएँ दिनानुदिन प्राप्त, प्रचारित और प्रसारित होती जा रही हैं।

आसन्न कुछ काल से जिन घोषणाओं की प्राप्ति हुई है उनका संकलन, आवश्यक जानकर, मैंने इस पुस्तिका में किया है; इस उद्देश्य से कि इनकी उत्तरोत्तर चरितार्थता पर लक्ष्य रखकर जिज्ञासु-जन सावधान होकर, यथासाध्य प्रयास, प्रतीकार द्वारा लाभ उठा सकें।

अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत तथा बँगला साहित्यिक आधार से जो सामग्रियाँ अबतक विश्वसित तथा प्रामाणिक रूप में उपलब्ध हुई हैं उनका मैंने इस निबन्ध में सन्निवेश किया है। वे प्रामाणिक भविष्यवाणियाँ चार श्रेणीभुक्त हैं।:—

(१) प्रसिद्ध उच्चकोटि के महात्माओं की वाणी।

(२) ज्योतिषशास्त्र की गणनानुसार भविष्यवाणी।

(३) आर्य सनातन धर्म ग्रन्थ, बाइबिल तथा कुरान आदि की वाणियाँ।

(४) संसार की सामयिक परिस्थिति के अनुशीलन के दृष्टिकोण से भविष्य का दिग्दर्शन।

उपर्युक्त आधार से प्राप्त प्रमाण तथा अनुमान से भविष्य-घटनाओं के संकेतवाक्य विश्वसनीय तथा इनकी चरितार्थता अवश्यंभावी प्रतीत होती है। उक्त अनेक सूत्रों से प्राप्त भविष्यवाणियों की घटनाओं तथा समयनिर्देश में थोड़ा-बहुत अवान्तर व्यतिक्रम हो सकता है किन्तु उनके मूलसिद्धान्तजन्य कोई प्रखर परिवर्त्तन अनिवार्य हैं, क्योंकि 'वृथा न होहि देवऋषि बानी।'

अब प्रथम प्रश्न यह है कि विश्व की अग्रिम ध्वंसलीला दुःखान्त ही रहेगी या सुखान्त भी होगी ?

उत्तर यह है कि प्रथम तो जनसंख्या का अधिक मात्रा में क्षय होने के कारण यह दुःखान्त ही प्रतीत होगी परन्तु उत्तरोत्तर परिणाम इसका बहुत श्रेयस्कर तथा कल्याणप्रद होगा। परमात्मा की कृपा से अवशिष्ट प्राणी चिर सुखशान्ति का उपभोग करेंगे और आगे की होनहार सन्तति को किसी प्रकार का कष्ट या अभाव नहीं रहेगा।

दूसरा प्रश्न है उक्त घटनाओं की कार्यपरिणति के समय का निर्द्धारण।

उत्तर यह है कि ज्योतिषशास्त्र की गणना को प्रधान आधार मान तथा अनेक प्रसिद्ध महात्माओं की वाणियों के संतुलन से अनुमान किया जाता है कि सन् १९६० ई० से लेकर सन् १९६२ ई० तक घोर ध्वंसकारी लीला ही चलेगी। सन् १९६२ के पश्चात् उत्तरोत्तर शान्तिमूलक कार्यावलि दृष्टिगोचर होगी।

यह सुपरिवर्त्तन मुख्यतः तो परमात्मा के लीलाकैवल्य से होगा किन्तु प्रकट निमित्त, मानवसमाज की प्रकृष्ट चेष्टा भी होगा क्योंकि ध्वंसकार्य का अवसान हो जाने पर उसकी उपशम दशा के प्रभाव से मानवसमाज में बहिर्मुखी भौतिक जड़वाद की प्रत्यावृत्ति होकर आध्यात्मिक भाव की जागृति होगी और तभी वास्तव सुख-शान्ति का अनुभव होगा।

तीसरा गवेषणीय प्रश्न यह होता है कि इस विकट अथवा कल्याणकारी आमूल परिवर्त्तन के नायक कौन और कहाँ होंगे ?

महाभारतान्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीता में उदित अमोघ भगवद्वाक्य कि—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥'

—उक्त अमोघ वाणी के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण किसी भी रूप में प्रादुर्भूत होंगे। उधर बाइबिल तथा कुरानशरीफ के अनुसार ईसामसीह तथा मेहदी इमाम का प्रगट होना कहा जाता है। ऐसी परिस्थिति में इस समस्या का समुचित समाधान यही है कि—

'जिनकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।'

जो कोई भी आवेंगे वे अखण्ड ब्रह्माण्ड के नियन्ता के प्रतीक रूप में ही इस विशेष कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि भिन्न-भिन्न देश या सम्प्रदाय वा धर्मावलम्बियों के निमित्त विभिन्न प्रतीक उपस्थित होकर विभिन्न देशों में पुनः साम्प्रदायिक झमेलों का सूत्रपात करें। वास्तव में वही एक महाप्रभु सबको अपने-अपने इष्टदेव के रूप में मिलेंगे। हिन्दू उनको भगवान् श्रीकृष्ण, शिव अथवा दुर्गा आदि के रूप में, क्रिश्चियन मसीहा के रूप में, मुसलमान मेहदी इमाम के रूप में तथा बौद्धादि सम्प्रदायवाले अपने-अपने इष्ट के रूप में पायेंगे; और यथोचित भजन-उपासना द्वारा अपने-अपने कल्याण का साधन करेंगे। पूर्वकाल में विभिन्न देशों में तथास्थ वातावरण और परिस्थिति के अनुकूल युगावतार, कलावतार, अंशावतार वा पैगम्बर आदि विशिष्ट रूप से प्रादुर्भूत होकर अपनी अलौकिक दैवी शक्ति से एक विशेष जागृति का संचार कर लोगों का कल्याण और उद्धार करते आये हैं। इदानींतन रेल, जहाज, एयरोप्लेन, तार, रेडियो, टेलिविजन आदि का इतना प्रचार हो गया है कि समय अथवा दूरी का प्रश्न ही गौण सा हो गया है। चाहे जिस महाद्वीप के लोग अन्य जिस किसी द्वीप में अल्प समय में बहुत सुगमता से यातायात करते तथा शिक्षा, कलाकौशल, वाणिज्यादि व्यवहार का स्वच्छन्दता से परस्पर विनिमय तथा आदान-प्रदान करते हैं। ऐसी स्थिति में पृथक् निर्दिष्ट किसी देश या सम्प्रदाय वा समाज के परिवर्त्तन या सुधार की कल्पना ही वृथा है।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि अखिल विश्व अभी भौतिक जड़वादी हो गया है और नित्य नवीन विलक्षण वैज्ञानिक आविष्कारों के मद से गर्वित होकर परमात्मा की सत्ता को चुनौती दे बैठा है। रूस और अमेरिका में राकेट की होड़ लगी है। फलतः 'अत्युच्चैः पतनम्' अथवा कवि जयदेव की वाणी में कल्कि अवतार का स्वरूप—'धूमकेतु मिव किमपि करालम्' चारितार्थ होने वाला है। सो जैसा जो कुछ हो किन्तु वह तो भविष्य

गर्भाशय में संचित है। अभी तो सद्यः परिणाम यह देखने में आता है कि इतने प्रकार के साधनों के होते हुए भी सारे विश्ववासी सशंक तथा अभावग्रस्त हैं और महामारी, अकाल, दुष्काल, तूफान, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, जलप्लावन, अग्निदाह आदि अनेक उपद्रवों के कारण अति दयनीय तथा, शोचनीय दशा तथा नैराश्य को प्राप्त हो रहे हैं। प्रत्येक बली वा निर्बल, धनी वा निर्धन, क्षीण वा समृद्ध, उन्नत वा अवनत समाज तथा राष्ट्र एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या, द्वेष तथा हिंसा के पोषण से अशान्त है। जबतक यह पारस्परिक वैषम्य नहीं मिट जाता तबतक चिरस्थायी सार्वभौम शान्ति का उद्‌गम असंभव है। अतः अब प्रभु की प्रेरणा से वही होने वाला है जिससे एक नवीन युग में एक अभिनव पद्धति से मानवसमाज का परिचालन होगा और परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास और श्रद्धा रखते हुए परस्पर प्रेम श्लाघा तथा सद्भाव से समस्त जगत् के प्राणी अपना जीवन व्यतीत करेंगे जिसकी उपयुक्त संज्ञा संयुक्त-मानवसमाज (Federation of mankind) होगी।

संस्कृत-साहित्यिक सामग्री—वेद, मनुस्मृति, महाभारत, रामायण, भागवत, भविष्यपुराणादि की गवेषणा से स्पष्ट भासित होता है कि कलियुग की समाप्ति हो रही है। बँगला साहित्य, महामहोपाध्याय पं० श्री गोपीनाथ कविराज, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, योगी अरविन्द तथा ब्रह्मचारी परिमल-बन्धुदास के लेखों पर विचार करने पर भी यही प्रतीत होता है। ब्रह्मचारीजी का कथन है कि ५१ संख्यक शेष कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के २८ वें चतुर्युग का विशेषत्व यह है कि इस चतुर्युग के तीसरे अर्थात् द्वापर युग से जीव उद्धारण भावसाधना का प्रारंभ हो गया है और इसी चतुर्युग का यह कलियुग अन्तिम कलियुग है। इस कारण इस बार केवल युगपरिवर्त्तन ही नहीं होगा अपितु पूर्व पद्धति का आमूल परिवर्त्तन हो जायगा। यह पूर्वकालीन सत्ययुग से भी विलक्षण होगा जब रोग, शोक, मृत्यु नहीं होगी। खाद्यादि और अन्य आवश्यकीय पदार्थों का अभाव नहीं रहेगा। मनुष्य तथा पशु-पक्षियों के सिवा वृक्ष, लता, भूमि, जलाशय पर्यन्त चिन्मय ओ चित् जड़मय हो जायगा। परन्तु इसमें कुछ काल सापेक्ष होगा। इसमें दस-बीस वर्ष का समय लग जा सकता है। इसकी सत्यता समय के क्रमिक अतिक्रमण होने पर स्वयं कसौटी पर निखर जायगी। अभी तो कल्पना मात्र ही समझी जायगी और आकाशकुसुम की भाँति असंभव प्रतीत होगी। फिर भी अनेक

प्रामाणिक भविष्यवाणियों का परस्पर सामंजस्य देखने पर सहसा अविश्वास भी नहीं किया जा सकता। आगे परमात्मा की इच्छा! उनमें अचिन्त्य शक्ति है और अघटनघटनापटीयसी उनकी माया है, अतः पूर्वोक्त परिवर्त्तन का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

अब रहा जिज्ञास्य विषय यह कि इस लीलानाटक के अधिनायक पूर्वोक्त महापुरुष कहां प्रादुर्भूत होंगे? सदा से एशिया महाद्वीप ही अवतारों, पैगम्बरों का केन्द्र रहा है। विशेषकर पूर्ण अवतारों का तो आर्यावर्त्त की पुनीत भूमि ही लीलाक्षेत्र होती आयी है और भविष्यवाणियों के आशय से प्रतीत होता है कि इस बार भी भारत ही को इसका श्रेय प्राप्त होगा और भारत ही समग्र पृथ्वी के मानव-समाज का नेतृत्व करेगा जैसा कि पूर्व में हो चुका है।

इस जटिलता से ओतप्रोत विकट समय में किसी को उद्विग्न वा भयभीत नहीं होना चाहिये। स्मरण रहे कि भगवान् जगज्जननी रूप से जो कुछ भी करते हैं या भविष्य में जो करेंगे वह सब प्राणियों के कल्याण-विधान के लिये ही होगा। तात्कालिक दण्डविधान रूप में यदि क्षय, उत्पाटन आदि ध्वंसकारी लीला दृष्टिगोचर हो भी तथापि परिणाम उसका सुव्यवस्थित मंगलमय कार्यक्रम की योजना ही होगी।

'होइहैं सोइ जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावहिं साखा।'

वृथा तर्क-वितर्क, विस्मय, आवेश, आवेग का क्या प्रयोजन, केवल करुणामय परमात्मा की वात्सल्य दृष्टि पर निर्निमेष भरोसा रखना ही अपना कर्त्तव्य है।

'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।'

गीता में भगवान् ने उक्त अमोघ वाणी से घोषणा की है कि मुझमें चित्त लगाओ तो मेरी कृपा से समस्त आपदाओं को तुम पार कर जाओगे।

वाराणसी
१-९-१९५७

श्री काशीनाथझा

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

पृष्ठ

हिन्दी-साहित्य से प्राप्त भविष्य वाणियाँ—

द्वितीय खण्ड

वंगीय साहित्य से प्राप्त भविष्य वाणियाँ—

तृतीय खण्ड

संस्कृत-साहित्यिक भविष्य की गवेषणा एवं विमर्श—

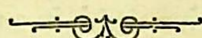
चतुर्थ खण्ड

अंग्रेजी-साहित्य से प्राप्त भविष्य वाणियाँ—



युगपरिवर्तन

(कब, क्यों और कैसे ?)



प्रथम खंड

हिन्दी-साहित्य से प्राप्त भविष्यवाणियाँ

(१९६२ ई० में महाप्रलयाशंका)

राजज्योतिषी की महाचिन्ताजनक घोषणा

'१६ जनवरी और १२ फरवरी १९६२ के बीच का काल मानव जाति के लिए अत्यन्त भयंकर होगा, जब युद्ध-आपद्, दैवी आपद तथा अन्य घटनाओं के फलस्वरूप धरा की मानव जनसंख्या का चतुर्थांश नष्ट हो जायगा।'

यह भविष्यवाणी अखिलभारतीय ज्योतिर्विज्ञान-परिषद् के महामंत्री राजज्योतिषी पंडित कृष्णमुरारि मिश्र की है, जिन्होंने पत्रकारों को बताया कि उपर्युक्त काल में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि तथा केतु एक ही राशि अर्थात् मकरराशि में वास करेंगे और केवल राहु अन्यत्र होगा, किन्तु मकर राशि पर उसकी भी पूर्ण दृष्टि होने के कारण मकर राशि में नवों ग्रहों का वास समझना चाहिये।

उन्होंने कहा है कि एक ही राशि में इन ग्रहों का एकत्र होना परम दुर्भाग्यसूचक है। राजज्योतिषी ने यह बताया है कि महाभारत युद्ध के समय केवल सात ग्रह एक राशि पर आये थे और उससे धरा पर जो उथल-पुथल हुई थी, उसने संसार का स्वरूप ही बदल दिया था। इस बार का योग उससे भी अधिक भयंकर है।

उन्होंने प्रकट किया है कि इस योग के फलस्वरूप भूकम्प, बाढ़, झंझावात (आँधी), महामारी, दुर्भिक्ष आदि दैवी आपदाओं का सर्वाधिक प्रकोप भारत के पूर्वी तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशों—पाकिस्तान, अफगानिस्तान, मलय, थाइलैण्ड (श्याम), चीन के उत्तरी भाग, रूस के पश्चिमी भाग, ग्रीस, हंगरी, नारवे, डेनमार्क, ब्रिटेन, आयरलैण्ड, हालैण्ड, कनाडा, संयुक्तराज्य (अमेरिका), ब्राजील और सीरिया —पर होगा।

राजज्योतिषी ने, जो अनेक पंचांगों के सम्पादक हैं, इससे पूर्व भी अनेक भविष्यवाणियाँ की हैं जो कालान्तर में सत्य निकलीं। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के छत्रभंग, महात्मा गांधी की हत्या, सरदारवल्लभ भाई पटेल और डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु, शेख अब्दुल्लाकी धोखेबाजी आदि की भविष्यवाणी उन्होंने इन घटनाओं से महीनों पूर्व अपने पंचांग में प्रकाशित कर दी थी। सरदार पटेल की मृत्यु तो ठीक उसी दिन हुई जिस दिन उनके पंचांग में लिखा था, किन्तु डा० मुखर्जी की घोषित मृत्युतिथि और पंचांग में उल्लिखित मृत्युतिथि में एक दिन का अन्तर था।

राजज्योतिषी ने प्रकट किया है कि ज्योतिर्विज्ञान-परिषद् इस दुर्योग के शमन और परिहार के निमित्त विशाल यज्ञ करने की आवश्यकता का अनुभव करती है। राजज्योतिषी ने, जो आधुनिक विज्ञान के भी पंडित हैं, बताया है कि यज्ञादि कर्मों से अणु-आयुधों के विस्फोट से उत्पन्न विषाक्त वातावरण पर भी विजय पायी जा सकती है।

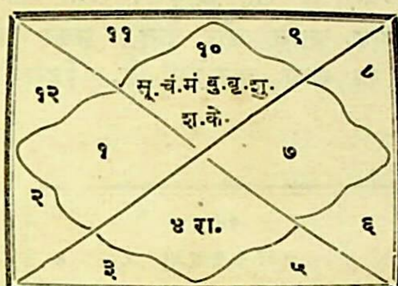
(नेशनल प्रेस द्वारा प्रकाशित। 'अखण्डज्योति वर्ष' १८, अंक ८, अगस्त, १९५७ से उद्धृत।)

तृतीय विश्वमहायुद्ध की आशंका

(**प्रो० वी० वी० रमन**, सम्पादक, एस्ट्रालाजिकल मेगजीन, बंगलौर)

संवत् २०१८ (सन् १९६२ ई०) माघकृष्ण अमावास्या रविवार को मकर राशि में ८ ग्रह एकत्र होने से भयानक कालकूट (महाविष) योग बनेगा। चान्द्र पौष मास के नवचन्द्र (४–५ फरवरी १९६२)

के दिन न केवल सूर्यग्रहण होगा बल्कि उस दिन ८ ग्रहों—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और केतु का भयंकर मेल होगा, जिसका वस्तुतः भयंकर परिणाम हो सकता है। प्रातःकाल लगभग ६।३० बजे (भारतीय स्टेण्डर्ड समय) आकाश में ग्रहस्थिति इस प्रकार होगी—



धनिष्ठा में सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र और केतु इन ग्रहों का योग हो रहा है। इनका स्वामी शनि है। भारतीय स्वाधीनता की कुंडली से यह योग ६वें स्थान में और पाकिस्तान से १०वें स्थान में हो रहा है। इसी प्रकार अमेरिका के लग्न से ८वें और रूस से १२वें में होता है। आठ ग्रहों का यह योग मकर राशि में हो रहा है और शनि का उस पर प्रभाव पड़ रहा है। शनि दुःख और शोक का ग्रह है, अतः यह अशुभ-सूचक ग्रह-स्थिति महत्त्वपूर्ण है। रंगमंच पर कम्युनिज्म और पश्चिमी लोकतंत्र के मध्य भयंकर संघर्ष होगा और संभव है कि कम्युनिज्म का अन्त हो जाय। यह युद्ध धन-जन का महा क्षयकारक और संहारक होगा। किन्तु मकर राशि 'चर' है अतः युद्ध दीर्घकाल तक न चलेगा। मंगल मेष नवमांश और शनि की सीमा पर है। बृहस्पति और शुक्र ठीक-ठीक योग पर हैं और मंगल शनि से दूर है, और ये दोनों भी योगस्थिति में हैं, अतः मारकाट और विनाश शीघ्रता से होकर वैरभाव भी शीघ्र शान्त हो जायगा। विश्व के सामने महा संकट उपस्थित है, जिसको राजनीतिज्ञ रोकने में असमर्थ हैं।

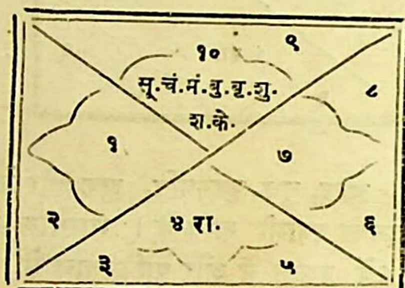
१९६० से १९६२ तक का समय विश्व के लिए संकटपूर्ण है।

('ज्योतिष्मती' त्रैमासिक पत्र—सोलन हिमाचल प्रदेश से उद्धृत।)

भीषण भविष्य

पं० श्री मधुकान्त झा
(ज्योतिषाध्यापक, संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी)

विक्रम संवत् २०१८ माघी अमावास्या रविवार (ता० ४ फरवरी १९६२ ई०) के रात्र्यन्त में राहु छोड़कर सभी ग्रह (सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि और केतु) मकर राशि पर होंगे। आठ ग्रहों के योग का नाम 'कूटयोग' है, जिसकी निम्नलिखित चन्द्रकुंडली होगी—



उक्तयोग का फल—पुर-नगरों का नाश, राज्यों का नाश, भूमिकम्प, मनुष्यों और चराचरों का नाश, अनेक दुर्घटनावश भूमंडल में हाहाकार। इस योग में ग्रहों के अंश में समता नहीं है। अतः यह योग अति प्रबल नहीं कहा जा सकता। परन्तु उक्त दिनांक ४ फरवरी में श्रवण नक्षत्र पर मंगल को छोड़कर सभी ग्रह एकत्रित हो जायंगे। दिनांक ६ फरवरी को मंगल भी श्रवण नक्षत्र पर होगा। पंचांगों के भेद से मकर राशि पर योग में भेद नहीं है, किन्तु सभी ग्रह एक नक्षत्र पर नहीं हैं। तथापि वराहमिहिरोक्त प्रकार से श्रवणादि तीन नक्षत्रों की दिशा पश्चिम-उत्तर है। मकर राशि शनि का क्षेत्र मंगल का उच्च और बृहस्पति का नीच है। इसलिये इस योग में शनि और मंगल प्रबल, बृहस्पति दुर्बल और सभी ग्रह मध्यबली हैं। इन कारणों से शनि और मंगल के द्वारा विशेष अनिष्ट फल होगा। शनि पश्चिम में तथा मंगल दक्षिण में बली है,

इसलिये पश्चिम और दक्षिण दिशाओं में क्रमशः शनि तथा मंगलकृत अनिष्ट होंगे।

संवत् २०१८ भाद्र शुक्ल पक्ष में धनु राशि पर शनिग्रह और मकर राशि पर गुरु ग्रह होगा। इसलिये निम्न प्रमाणानुसार देश में बहुत उपद्रव होंगे—

गुरोर्गेहे यदा मन्दो मन्दगेहे तथा गुरुः।
तदा गुरुभयं लोके जगाद बादरायणः॥

उक्त आठ ग्रहों के योग-समय में रविवार के रात्र्यन्त में सूर्य ग्रहण होगा। वह ग्रहण भारतवर्ष में दृश्य नहीं होगा, क्योकि ग्रहण के स्पर्श से मोक्ष तक के समय में भारतवर्ष में रात रहेगी।

भारतीय स्टैण्डर्ड टाइम के अनुसार उक्त सूर्यग्रहण का स्पर्श रात्रि में घं० ३ मिनट ३० पर होगा, और घं० ४ मिनट ५४ पर मोक्ष होगा। उक्त आठ ग्रहों के एक राशि पर रहते हुए उक्त सूर्यग्रहण एक भयानक परिस्थिति को उत्पन्न करेगा। वह भयानक स्थिति विशेषतः उन देशों में होगी जहाँ वह ग्रहण दृश्य होगा। मकर राशि पर आठ ग्रहों का योग लगभग सवा दो दिन रहेगा। ताः ६ फरवरी में शनि तथा मंगल का योग होगा, तथा शनि और बृहस्पति का मकर राशि पर अंशसाम्य ताः १८ फरवरी १९६१ ई० में होगा। शनि और बृहस्पति परस्पर क्षेत्र में ताः १२-६-६१ से ताः ११-१०-६१ तक रहेंगे।

ताः १५ फरवरी १९६१ में सर्वग्रास सूर्य ग्रहण तथा ताः २ मार्च १९६१ में चन्द्रग्रहण (उभयपक्षीय ग्रहण) होगा।

इन कारणों से १८ फरवरी १९६१ ई० से संसार में अशान्ति का समय होगा। विशेषतः ४ फरवरी १९६१ से तीन दिन तक भूमंडल में भयानक परिस्थिति रहेगी।

संवत् २०२० मार्गशीर्ष मास (दिसम्बर १९६३) में क्षयमास होगा, अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष के पश्चात् पौष शुक्लपक्ष होगा। पौषी पूर्णिमा सोमवार (३० दिसम्बर) को चन्द्रग्रहण भी होगा। क्षयमास से पूर्व आश्विन में तथा चैत्र में २ बार अधिमास होंगे। क्षयमास क्षयकारक है और वह बहुत समय पर विरला ही होता है।

उपर्युक्त लेखों का सारांश यह है कि १९६१ ई० के फरवरी माह से भूमंडल में अशान्ति का पूर्वरूप होगा और १९६४ तक में विश्व अशान्तिमय हो जायगा। इससे रक्षा पाने के लिये जनता तथा सरकार समुचित प्रयत्न अभी से करें। अनर्थकारी आपदाओं की शान्ति तथा विश्वकल्याण, विशेषतः भारतवर्ष के ग्राम-नगर-पुरवासियों की रक्षा के लिये हरिद्वार के गंगाजल से सन् १९६१ से १९६४ ई० तक श्री १०८ रावणेश्वर वैद्यनाथ कामनालिंग का नित्य महारुद्राभिषेक, 'करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी, शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः' इस मंत्र से सम्पुटित विन्ध्याचल में लक्षचंडी प्रयोग, काशी आदि अनेक पुण्य तीर्थों में ग्रहयाग तथा सब जगह सार्वजनीन यज्ञानुष्ठान-भगवन्नाम-कीर्त्तनादि होना चाहिये।

सन् १९६४ के पश्चात् बहुत शुभ दिन आयँगे और विश्ववासी शान्ति और आनन्द से जीवन व्यतीत करेंगे।

८ ग्रहों के एकराशिगत होने का फल

(महामहोपाध्याय दैवज्ञ विरचित 'प्रश्नचण्डेश्वर' ग्रन्थ से उद्धृत)

राहुर्मन्दो महीजो रविशशिभृगुभिर्वाक्पतिश्चन्द्रपुत्रो
यद्येते चैकराशौ ग्रहगणसहिता यस्य कस्यापि काले।
हाहाभूतं समस्तं पुरनगरलयं छत्रभंगं नृपाणां
प्रालेयं भूमिकम्पं मनुजहतिकरं सर्वसंहारकारि॥

अर्थात्—यदि राहु, शनि, मंगल, सूर्य, चंद्र, शुक्र, बृहस्पति तथा बुध ये सभी ग्रह एक राशि में किसी समय हों तो उस समय समस्त भूमंडल में हाहाकार हो जाता है, पुर-नगर नष्ट हो जाते हैं। राजाओं का विनाश होता है, ओले पड़ते हैं, भूकम्प होता है, मनुष्यों का नाश होता है तथा सब चर-अचर प्राणियों का संहार होता है।

संवत् २०१८, सन् १९६२ ई० रविवार ४ फरवरी को मकर राशि में आठ ग्रह एकत्र होने से उसका फल जैसा ऊपर कहा गया है वैसा ही संभावित है।

भविष्यवाणियाँ

(१)

(भक्त सूरदास)

रे मन धीरज क्यों न धरे।
संवत दो हजार के ऊपर ऐसा जोग परे।
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन चहुंदिशि काल फिरे।
अकालमृत्यु जगमाहीं व्यापे प्रजा बहुत मरे।
सहस वर्स लगि सतयुग बीते धर्म की बेल बढ़े।
स्वर्णफूल वन पृथिवी फूले सुख की दशा फिरे।
सूरदास यह हरि की लीला टारे नाहि टरे॥

(२)

(मानसरोवर के स्वामी अवधूतानन्द जी महाराज)

संवत् २००० से सतयुग का समय आरंभ हो चुका है। परन्तु वह सतयुग सं० २०२२ या सन् १९६४ ई० से प्रत्यक्ष अनुभूत होने लगेगा। उसमें किसी प्रकार का कोई पाप, ताप, रोग, शोक, अभाव, बुढ़ापा, मृत्यु, कुछ भी न रहेगा। अन्न, वस्त्र, फल, फूल, बिना चाहे पर्याप्त प्राप्त होंगे।

(३)

(गंगोत्री के तपस्वी रामानन्दस्वामी जी महाराज)

भारत तथा पाकिस्तान में महायुद्ध अवश्य होगा। इस संसार का रूप शीघ्र बदलने वाला है। मनुष्यों में ऐसा संघर्ष होनेवाला है जो इतिहास ने आजतक नहीं देखा था। काश्मीर के बहाने भारत तथा पाकिस्तान में युद्ध छिड़ेगा और वही विश्वव्यापी हो जायगा। किसी प्रकार से भी समझौते की बात सफल न होगी। महानाश की तैयारियां जोर से हो रही हैं।

(४)

(हिमालय के सिद्ध महात्मा स्वामी शान्तानन्दजी महाराज)

'साधक-श्रेष्ठ कलि-जीव आज क्रम-विकाश का परम उन्नत शिखर आरोहण कर, कलि-अन्त, सत्ययुग आगमनीय महा-सन्धि में भगवत् चरण वन्दना की ही आशा में है। प्रभु आज सर्व विपद् से मुक्त कर परमानन्द में युक्त कर प्रेम-भक्ति शरणागति रूपी नौका में स्वयं कर्णधार बन भवसागर पार कर रहे हैं, हमें बालक बन पालक की ओर ताकना मात्र ही साधन है।'

('दिव्य ज्योति' मासिक पत्र, सं० २०१५ भाद्रपद)

(५)

(कुरान शरीफ)

'चौदहवीं सदी (हिजरी) में कयामत होने वाली है। उसमें दुनिया के बहुत लोग मर जायँगे। आबादी बहुत कम बचेगी। फिर हजरत इमाम मेहदी आयँगे और सबका उद्धार करेंगे। नये सिरे से दुनिया बसेगी और सब अमन चैन से जिन्दगी बसर करेंगे।'

टिप्पणीः—अभी (सन् १९५९ में) हिजरी साल १३७४ है और ज्योतिष गणना तथा अन्यान्य महापुरुषों और महात्माओं की भविष्य-वाणियों के अनुसार सन् १९६२ ई० तक महाध्वंस होने वाला है। हिजरी साल तब तक १३७७ हो जायगा और चौदहवीं हिजरी का अन्तिम समय आ जायगा। इससे भी भविष्यवाणियों की पुष्टि होती है।

—०—

द्वितीय खंड

भविष्यवाणियाँ

(१)

(वंगीय साहित्य से प्राप्त)

ब्रह्मर्षि श्रीसत्यदेवकृत **'साधनसमर (चंडीमाहात्म्य)'**

खंड १, अध्याय १, मंत्र ३० की व्याख्या:--

'इस दुर्दिन में, इस युगसन्धि के महाक्षण में माँ ! तू एक बार स्नेहमयी मूर्त्ति बनकर दर्शन तो दे ! हमारे अहंभाव को एक बार छीन तो ले। और एक बार—एक बार मात्र, अपना यह पीनोन्नत पयोधरवृन्त अपनी सन्तान के मुख में प्रविष्ट करा दे, जिससे हमारा शुष्क कंठ रसार्द्र हो जाय। हम सबों की त्रितापज्वाला शान्त हो जाय। यह धन्य देश फिर धन्य हो जाय।'

टिप्पणी--उपर्युक्त ब्रह्मर्षिजी की उक्ति में 'युगसन्धि' शब्द से ध्वनित होता है कि युग का परिवर्त्तन होने वाला है, तथा भारतवर्ष जो अति प्राचीन काल से अग्रगण्य था किन्तु साम्प्रतिक, कियत् आधिभौतिक अंश में जिसकी अवनति प्रतीत हो रही है, वह फिर से विश्वमान्य होकर प्रकृत आध्यात्मिक पथ का प्रदर्शन करायेगा।

(२)

श्री विश्वरंजन ब्रह्मचारीकृत **'जीवन लक्ष्य'** ग्रन्थ (पृ० १४) से उद्धृत

'जगदीश्वर की जिस प्रकार की प्रेरणा मिली है उससे अब हमलोगों को हताश होने का कोई भी हेतु नहीं। इस घोर मिथ्या युग में ही सत्ययुग का समुज्ज्वल प्रकाश बिखर जायगा। अब पुनः इस देश में ऋषियुग आवेगा। फिर यज्ञधूम से भारत-गगन पवित्र होगा। पुनः ब्राह्मणों के प्रणवनाद से, अमोघ आशीर्वाद से, बहुधा लोगों के प्राण

संजीवित हो उठेंगे। फिर यह भारत ही समग्र वसुधा को ज्ञानप्रकाश द्वारा अमृत का पथप्रदर्शन करा देगा। लक्ष्य वस्तु का सन्धान बता देगा। वह दिन आएगा, अवश्य ही आएगा।'

(३)

(महामहोपाध्याय डा० श्रीगोपीनाथ कविराज एम० ए० प्रणीत
'अखण्ड-महायोग' ग्रन्थ से उद्धृत)

समग्र विश्व का सर्वाङ्गीण-पूर्णता-लाभ ही अखण्ड महायोग का चरम उद्देश्य है।

जब तक जगत् में दुःख है, अभाव है, पाप-ताप है, तब तक तो अपूर्णता ही है। पूर्ण पूर्ण ही है, किसी एक व्यक्ति के पूर्ण हो जाने से सबकी ही प्रकृत पूर्णता का पथ खुल जाता है एवं सबको पूर्णतः लाभ होने पर ही किसी एक व्यक्ति की पूर्णता सिद्ध हो सकती है। पूर्णता विखण्डित नहीं होती। वस्तुतः अखण्ड पूर्णता ही परिपूर्णता है—वही महायोग है।

उसको समग्र जीव-जगत् का उद्धार कहा जा सकता है, विश्व-स्थित अनन्त ब्रह्माण्ड का उद्धार कहा जा सकता है, सबों की ऐकान्तिक वा आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति कहा जा सकता है, त्रिकालवर्त्ती त्रिधातुस्थ सभी तत्त्वों और सभी तापों का उपशम कहा जा सकता है और सबका अविच्छिन्न आनन्दलाभ तथा निखिल प्राणियों की सम्यक् इष्टसिद्धि भी कहा जा सकता है। वही विश्वातीत—विश्वव्यापी नित्य लीला एवं अखण्ड रासमण्डल में सब जीवों का प्रवेश लाभ है। इस अवस्था में कोई भी पर नहीं रह सकता, सब अपने हो जाते हैं। यह अपने साथ अपना ही खेल है अथ च नित्यलीला में स्थिति है। एक ही अनन्त एवं अनन्त की सब ओर एक ही सत्ता भासित होती रहती है। उस समय काल नहीं, जरा नहीं, मृत्यु नहीं, क्षुधा-तृषा नहीं अथवा पाप-ताप की ताड़ना नहीं, संकोच वा परिच्छिन्नता नहीं और आवरण-विक्षेपमयी अविद्या का प्रभाव भी नहीं। सब उस मूल अद्वैत स्वरूप में स्थित होते हैं। विश्वमाया चिर अस्तमित हो जाती

है। पूर्ण वस्तु का जब तक जगत् में आत्मप्रकाश नहीं होता तब तक सब जीवों के परिपूर्ण होने की आशा दुराशा मात्र है।

विश्वव्यापी संहार आसन्न होकर सामने उपस्थित है। विश्व पूर्णत्वलाभ के पथ पर चल चुका है, उसकी गति का निरोध करना किसी का साध्य नहीं। हमलोगों के इस दृश्य जगत् की कोई भी वस्तु नहीं रहेगी। वृक्ष, लता, पशु, पक्षी, उद्यान, जलाशय तथा व्यावहारिक यावतीय सामग्री, सब प्रपंच एक मुहूर्त्त में विद्युत् वेग से तिरोहित हो जायगा। सहसा एक प्रकाश अथवा वाष्पादि की नाईं कोई अचिन्त्य शक्तिशाली तीव्र अतीन्द्रिय पदार्थ की क्रिया समस्त जगत् में प्रकाशित हो जायगी, एवं जड़ नामक कुछ भी नहीं रहेगा। सब चैतन्यमय हो जायगा। मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राणधारियों की तो बात ही क्या, यहाँ तक कि समस्त वृक्ष, लता, भूमि पर्यन्त चित् जड़ हो जायगी।

(४)

(कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

'नेमेछे धूलार तले, हीन पतितेर भगवान।'

अर्थात्—पतित से भी अति पतित को उद्धार करने के लिये अति साधारण रूप में भगवान का आविर्भाव हो चुका है जो कुछ समय व्यतीत होने पर स्वतः सब लोगों को ज्ञात हो जायगा।

काकतालीय न्याय संयोगवश उपर्युक्त कवीन्द्र के कथनानुसार ही इसके परे श्री पतित परिमलबन्धु दास ब्रह्मचारी का जो महाप्रकाश लीला सन्देश शीर्षक प्रबन्ध लिखा जाता है, वह सर्वथा उस उक्ति का समर्थक है।

यद्यपि प्रबन्ध का सविस्तर उपपाद्य रहस्य उनके प्रकाशित बँगला ग्रन्थ में प्रतिपादित है परन्तु आभासमात्र के लिये यहाँ संक्षेप में उसके सारांश का उल्लेख इस छोटे प्रबन्ध में किया जाता है—

श्रीकृष्णलीला वा वृन्दावन रासलीला

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान् कहते हैं :—

'यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥'

जब-जब धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अवतार ग्रहण करता हूँ। साधुजनों के परित्राण (रक्षा) एवं दुराचारियों के विनाश के लिए युग-युग में मैं अवतीर्ण होता हूँ। इसी भावक्रम से आवहमान काल से जगत् में श्री भगवान् की लीला चल रही है। किन्तु विगत द्वापर युग के शेष भाग में वृन्दावन में जो श्रीकृष्णलीला का अभिनय हुआ उसमें इस सनातन क्रम के व्यतिक्रम का उत्थान हुआ। किस प्रकार ऐसा हुआ सो मैं कहता हूँ—

विश्वप्रेम की प्रतिमा—प्रतीक, श्रीमती राधा ने निखिल जीवों के दुःख से कातर होकर श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि आप समस्त जीवों के समस्त दुःख-क्लेशों का निवारण करें एवं अपनी रसधारा से सिंचन कर दिव्य जीवन प्रदान करें। किन्तु श्रीमती राधा के इस अनुरोध को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूर्ण नहीं कर सके। कारण यह है कि प्राचीन सनातन क्रमानुसार जीव कर्मफलाधीन है—'स्वकर्म फलभुक् पुमान्'। अर्थात् जीव अपने कर्मों का फलभोग करता रहता है एवं भगवान् द्रष्टामात्र साक्षी रूप से जीवों के कर्मफलों का नियंत्रण करते हैं। स्वकृत कर्मानुसार जीव संसार में आकर सुख अथवा दुःख का भोग किया करता है। सुकर्म के फल से जीव सुखी तथा कुकर्म के फल से दुखी होता है। श्रीमती राधा की वासना पूर्ण होने से उक्त कर्म-फल-भोग की सनातन क्रमधारा विनष्ट हो जाती है एवं इसके परिणाम से प्राचीन सृष्टिक्रम का दूसरा एक अभिनव रूप हो जाता है। श्रीकृष्ण भक्त के भगवान् हैं। वे भक्त के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति के निकट प्रगट नहीं हो सकते। किन्तु राधा का अनुरोध पूर्ण होने से उन को भक्त अभक्त सबों के निकट प्रगट होना पड़ेगा जो प्राचीन सृष्टि की मूलनीति के विरुद्ध है। श्रीकृष्ण राधा की मनोवांछा पूर्ण नहीं कर सकने पर उनके निकट ऋणी रहे एवं भविष्य में किसी समय उनकी वासना की

पूर्त्ति करेंगे यह कह कर प्रतिज्ञाबद्ध हुए। इसी कारण वृन्दावनलीला से जीवोद्धारण भावसाधना का प्रारंभ हुआ। अर्थात् प्राचीन क्रम वा जीवों के कर्म-फल-भोग क्रमधारा के विपरीत भाव के आन्दोलन की सृष्टि हुई।

श्री गौरांगलीला वा नदियाधामलीला

कलियुग के सन्धिक्षण में युगल श्रीराधाकृष्ण ने एक अंग में सम्मिलित होकर बंगाल देशस्थ नवद्वीप (नदिया) में श्री गौरांग रूप धारण किया। श्रीमती राधा का ऋणशोधन करना ही इस नदिया लीला का मुख्य उद्देश्य था। किन्तु कृष्ण ही जैसे गौरांग भी प्राचीन सृष्टि धारा का वास्तविक व्यतिक्रम नहीं कर सके। उन्होंने भी भक्त के भगवान् होकर ही लीला की। किन्तु इस गौरांग लीला में यह विशिष्टता हुई कि जगाइ मधाइ के उद्धार-व्यापार से भागवती लीलाधारा विपरीतमुखी हुई। कारण यह कि जगाइ-मधाइ महापापंड प्रकृति के थे। उन्होंने गौरांग देव के प्रिय भक्त नित्यानन्द के अंग में आघात कर रक्त प्रवाहित किया। किन्तु तिस पर भी उनके मस्तकोच्छेद नहीं किये गये। गौर की पूर्ववर्त्ती सब लीलाओं में, यहाँ तक कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की वृन्दावनलीला पर्यन्त में भी दुराचारियों का विनाश क्रम ही जारी रहा। स्वयं श्रीकृष्ण ने प्रेमावतार होने पर भी पूतना राक्षसी, अघासुर, बकासुर प्रभृति की हत्या की थी। किन्तु गौर लीला से हत्या के बदले हृदय के परिवर्त्तन भाव की बात चली, जिस कारण जगाइ मधाइ का मस्तक छेदन नहीं होकर हृदय का ही परिवर्त्तन हुआ। वे महापापंडी होने पर भी अभिनव मनुष्य रूप में परिणत होकर प्रेमावतार श्री गौरांग की जयघोषणा करने लगे। फिर भी जगत् के कोटि-कोटि मनुष्य पहले जैसे अपने-अपने कर्म का फलभोग करते ही चलते रह गये। गौरांग देव भी राधा का ऋण चुका नहीं सके। किन्तु चैतन्य भागवत में उन्होंने भविष्यवाणी की कि मुझको पुनः दो बार आना पड़ेगा एवं मेरी अन्तिम लीला अति-चमत्कारी होगी और उस लीला में ही समस्त जीव नवीन रूप धारण करेंगे।

गौरलीला का और भी विशेषत्व देखा गया श्रीमान् नित्यानन्द के प्रत्यक्ष आचरण से एवं उनकी एक प्रख्यात उक्ति से। वे पतित अभागों के बीच रहकर जैसे उनके जीवन में परिवर्त्तन करने लगे वैसे ही वे पतितों के प्रति प्रेमसम्पन्न होकर उनके प्रति ऋणी भी बने; जैसा कि श्री वासुदेव घोष कृत पद में है—करुणार्द्र होकर प्रभु पतितों के गले लग-लग कर रोते और पत्थर को भी पिघला देने वाले गद्गद स्वर में यह कहते कि मैं तुम सब का बहुत उधार खाये बैठा हूँ। यह प्रेम का पसार ले लो कि उऋण होऊँ। नित्यानन्द की इस प्रकार की उक्ति ने इस भाव को दर्शाया कि पतित ही पावन का स्रष्टा (हेतु) है। यह भाव-सृष्टि की कल्पना है।

श्रीभगवान् पतितों के निकट ऋणी हुए। कारण यह कि उनके अवतरणमूल में पतित कुल ही विराजमान है। धर्म की ग्लानि न होने से भगवान् का आविर्भाव नहीं होता। जो लोग धर्मग्लानि का हेतु बनते हैं वे अधर्माचारी पतित ही भगवान् के नररूप में आविर्भूत होने के मूलकारणस्वरूप हैं। किन्तु प्राचीन क्रम के अनुसार भगवान् अपने आविर्भाव के समय भक्त माता पिता का ही आश्रय लेते आये, पतित पाषंडी का आश्रय नहीं। पतित का आश्रयण न करने पर श्रीमती राधा का ऋण परिशोध नहीं होता, उनके अनुरोध का पालन नहीं होता। इसीलिये वास्तविक पतितपावनी लीला भी नहीं हो सकती है। संसार में भक्तों की संख्या सदा सीमाबद्ध ही होती है। अतएव भगवान् के भक्ताश्रयणजन्य उनकी भागवती लीला अब तक छोटी सीमा ही में आबद्ध रही है। किन्तु श्रीमान् नित्यानन्द ने पतित के निकट ऋण स्वीकार कर यह संकेत किया कि भविष्य में भगवान् का आश्रय होगा, पतितवर्ग वा विरुद्ध शक्ति एवं पतितों का वे स्रष्टा (मूल कारण) की भावना से आदर करेंगे, उनका भजन सेवा करेंगे। पतितवर्ग महाजन एवं भगवान् ऋणी श्रेणी भुक्त होंगे। जन्म जन्मान्तर से पतितजन जितने दुःख कष्ट का भोग करते चले आये हैं उन सब के लिये भगवान् स्वयं अपने को दायी समझेंगे एवं अपनी शक्ति का प्रयोग पतित कुल का सब दुःख निवारण करने में करेंगे तथा उनको परमानन्द

प्रदान करना अवश्य अपना कर्त्तव्य मानेंगे एवं इसी से जगद्व्यापिनी वास्तविक, पतितपावनी लीलाधारा प्रवाहित होगी।

(श्री महाप्रभु जगद्बन्धु-लीला)

पूर्व में कहा गया है कि श्री गौरांग प्रभु ने चैतन्य भागवत में भविष्यवाणी की थी कि मुझे दो बार पुनः इस धरातल पर आना पड़ेगा। तदनुसार वे बंगला ताः १६ वैशाख सन् १२७८ साल (मई १८७१ ई०) में मुर्शिदाबाद में श्रीजगद्बन्धु नाम से आविर्भूत हुए। तब से सन् १६२१ ई० तक जो लीला उन्होंने की वह भी भक्त के भगवान् की लीला थी। इसलिये इस लीला में भी श्रीमती राधा का ऋण शोध नहीं हुआ, जीवों के कर्म फल भोग का ही क्रम जारी रहा। तब से महाप्रभु अपने अन्तिम जीवन काल में अपने आश्रम में अचैतन्य भाव से समाधिस्थ पड़े हैं। और वहां लगातार नाम कीर्त्तन जारी है। कहा जाता है कि कुछ समय से वे गुप्त रूप में आविर्भूत हो चुके हैं और कुछ ही कालान्तर में वे प्रगट होकर पतितपावनी लीला करेंगे जिससे सब जीवों का कल्याण होगा। पतितों का उद्धार होगा।

(५)

(महाप्रभु श्रीजगद्बन्धु)

माँ, महाप्रलय आने ही वाला है। तेरे नाम की रट लगे तो काल-पाश का जाल कटे और सारी सृष्टि की भी रक्षा हो। कलियुग के पाँच हजार वर्ष पूरे हो चुके अब तनिक भी देर न कर।

······हजार वर्ष मेरी लीला चलेगी।

मैं हजार-हजार हरिनाम बिखेर चुका हूँ, और भी कोटि-कोटि बिखेरता फिरूँगा। मैं ब्रह्मांड का बन्धु हूँ, अकेला ही सारे ब्रह्मांड में कीर्त्तन करूँगा। समय आने पर देखोगे, क्या धनी क्या दरिद्र, क्या साधु, क्या असाधु, क्या राजा, क्या प्रजा सभी नाक आँख के जल से प्लावित हो जायँगे। तब विवश होकर मेरी शरण लेंगे।

अणु परमाणु स्थावर जंगम कीट पतंग प्रभृति सब उद्धार का प्रयासी होकर, हरिनाम के भिखारी रूप से मेरी ओर टकटकी लगाकर

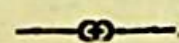
देख रहे हैं। इस बार मैं सभी को हरिनाम अमृत चखाऊँगा, तभी मेरा नाम जगद्बन्धु सार्थक होगा। मेरे इस महा उद्धारण व्रत का उद्यापन इसी बीसवीं शताब्दी के भीतर पूर्णरूप से हो जायगा। मैं एक-एक बार से एक-एक महाद्वीप को ठीक कर दूँगा। एक-एक दिन में एक-एक महादेश से मद्यपान और गोहत्या उठ जायगी।

(६)

(ब्रह्मचारी श्रीपरिमलबन्धु दासकृत **'महाप्रकाशलीला सन्देश'** का सारांश)

फरवरी १९६१ ई० में पाकिस्तान का काश्मीर पर आक्रमण, तृतीय महायुद्ध का प्रारम्भ एवं नवम्बर १९६१ के भीतर पाकिस्तान का विलयन एवं अखंड भारत की प्रतिष्ठा।

फरवरी १९६२ में पूर्ण स्वाधीन अखंड भारत का विजयोत्सव। एक लाख मृदंग से हरिकीर्त्तन। इस कीर्त्तन के बाद से तृतीय महायुद्ध का विस्तार एवं इसी समय से महाध्वंसकारी जड़शक्ति के साथ अभिनव चित् शक्ति का विपुल संघर्षण प्रारंभ। जड़शक्ति की ध्वंस क्रिया से भारत के बहिर्भूत पृथिवी के दो तृतीयांश मनुष्यों का विनाश। भारतव्यापी अभिनव महाकीर्त्तन द्वारा भारतवर्ष की रक्षा होगी। सन् १९६३ साल आते ही महायुद्ध का विराम। १९६४ से १९६७ के भीतर समग्र पृथिवी में लीलाकीर्त्तन का प्रचार, जो एक हजार वर्ष तक चलेगा।



तृतीय खंड

संस्कृत साहित्यिक भविष्य की गवेषणा एवं विमर्श—सम्पादकीय ।

उपोद्घात

आजकल युगपरिवर्त्तनसंबन्धीय अनेकानेक भविष्यवाणियों की घोषणाएँ अनेक सूत्रों से प्रचारित हो रही हैं। इस विषय में संस्कृत साहित्य के सनातन धर्मग्रन्थों में प्राचीनकाल से अनेक भविष्योक्ति लिखी पड़ी हैं। किन्तु गतानुगतिक क्रम से उसकी अवहेला होती चली आ रही है। उसके यथार्थ रहस्य निर्द्धारण की मीमांसा करने के लिये कोई विशेष सामूहिक प्रयत्न भी नहीं हुआ है। साधारणतया लोगों की यह धारणा है कि कलियुग की आयु शास्त्रानुसार चार लाख बत्तीस हजार वर्ष है जिसमें अभी केवल पाँच हजार वर्ष के लगभग बीते हैं। कलियुग समाप्त होकर पुनः सत्ययुग आने में अभी लाखों वर्ष बाकी हैं, तो क्यों इस विषय की अभी कोई चर्चा अथवा व्यग्रता की जाय, जब जो होगा देखा जायगा। किन्तु साम्प्रतिक सांसारिक विषम परिस्थिति तथा अनेक सूत्रों से प्राप्त युगपरिवर्त्तन की घोषणाओं के कारण इस विषय के विचार की नितान्त उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। इस विषय में मैं अपने अनुमान, अनुभव एवं तर्क के अनुसार तथा शास्त्रों के आशयों का यथासंभव सामंजस्य रखते हुए, गवेषणा दृष्टि से समीक्षा करना चाहता हूँ। केवल शास्त्र पंक्तियों के यथायथ वाच्यार्थ के आधार पर हठ से विवाद करने पर मतभेद होना स्वाभाविक ही है। किन्तु मैं हठ का अवलंबन करना नहीं चाहता। मैं तो शास्त्रों के युक्तियुक्त उपादेय आशय के ग्रहणपूर्वक अपने अभिमत विचार का स्थापन करना चाहता हूँ। कहा भी है कि—'युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि' अर्थात् यदि अल्पवयस्क बालक भी युक्तिसंगत बात कहे तो वह ग्रहण करने के योग्य है, किन्तु युक्तिहीन बात यदि सयाने भी कहें तो वह सर्वथा अग्राह्य है। इसके समर्थन में बृहस्पति ने ऐसा कहा है कि—

'केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ।'

अर्थात् केवल शास्त्रवाक्य के आधार पर कोई निर्णय कर लेना उचित नहीं, युक्तिसंगत भी होना आवश्यक है। युक्तिहीन विचार से धर्म की हानि होती है।

मैं सर्वप्रथम अपने अनुभव की कुछ बातें यहाँ कहना आवश्यक समझता हूँ। मेरी अवस्था अभी ७६ साल की है। अपनी बाल्यावस्था से इस अवस्था तक संसार में अपरिमेय परिवर्त्तन देख रहा हूँ। परिवर्त्तन किसी एक प्रकार का नहीं, प्रत्युत आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्यान्य अनेक प्रकार के असीम परिवर्त्तन देखने में आ रहे हैं। इन स्वल्प साठ-सत्तर वर्षों में इतने कलियुगी भावनापन्न परिवर्त्तन की प्रतीति हुई है तो इस अनुपात से ४ लाख ३२ हजार वर्ष कलि की आयु का क्या परिणाम होगा यह सहज ही सोचा जा सकता है।

कहा जाता है कि घोर कलियुग के अन्त में भगवान् कल्कि का अवतार होगा जो म्लेच्छभावापन्न प्रजाओं को विनष्ट कर देंगे। फिर दूसरी नवीन सृष्टि होगी जो सत्ययुग कहलायगी।

यहाँ एक बात यह भी विचारणीय है कि सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि-युगों में धर्म के ४, ३, २, १ पाद क्रम से कहे गये हैं। पूर्व के तीनों युगों में धर्म का प्राचुर्य तथा अधर्म की अल्पता रहने पर भी भू-भार उतारने के लिये मत्स्यादि से लेकर श्रीकृष्ण तक आठ अवतार हो गये। और जब इस कलि के इतने अल्प दिनों के अभ्यन्तर अधर्म का इतना बाहुल्य है जो घोर कलियुग सा प्रतीत हो रहा है तब सवा चार लाख वर्षों के पश्चात् परमात्मा की दृष्टि में घोर कलियुग आवेगा और तब भू-भार को हलका करने के लिये वे कल्कि रूप से आविर्भूत होंगे!

दूसरी आलोचनीय बात यह है कि त्रेता के अवसान काल में भगवान् के दो अवतार हुए। परशुराम के रहते ही श्रीरामचन्द्र का अवतार हुआ।

तीसरी बात यह है कि द्वापर के अन्त में धर्म की ग्लानि तथा अधर्म का उत्थान होने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने कंसादि दुराचारियों का विनाश किया और महाभारत संग्राम हो जाने पर तदानीन्तन अत्याचारियों, दुराचारियों का निःशेष रूप से विनाश हो जाने पर वातावरण प्रशान्त हो गया। पीछे श्रीकृष्ण भगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर कलियुग का आगमन हुआ। इसके लगभग २५०० वर्षों के अभ्यन्तर ही हिंसा-प्रसार का दमन करने के निमित्त भगवान् बुद्धदेव का नवम कारुणिक अवतार हुआ। ये दो अवतार अति सन्निकट व्यवधान काल में हुए, और जब इतने अनाचार, अत्याचार, दुराचार तथा हिंसा की प्रबलता दिनानुदिन बढ़ रही है जिससे अभी ही घोर कलियुग का अनुभव हो रहा है तो लाखों वर्षों में भगवान् कल्कि का अवतार होकर युगपरिवर्त्तन और परिस्थिति का सुधार होगा यह युक्ति और अनुमान से बाहर है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥'

अर्थात् जब-जब धर्म की ग्लानि तथा अधर्म का उत्थान होता है तब-तब मैं अवतीर्ण होता हूँ। यहाँ 'यदा-यदा' कहने में अवतार का कोई निर्दिष्ट समय सापेक्ष नहीं और 'संभवामि युगे-युगे' यह तो सापेक्षिक काल का द्योतक है। तो इसका आशय यह होता है कि जिस किसी समय धर्म की ग्लानि तथा अधर्म का बाहुल्य हो उसी समय भगवान् का प्रादुर्भाव होता है। इसलिये 'युगे-युगे' कहने में सत्ययुग आदि से तात्पर्य नहीं। अतः उक्त उक्ति के समन्वय से भगवान् के अवतार की संभावना जिस किसी समय हो सकती है, प्रत्युत सामयिक धर्मग्लानि की दृष्टि से तो अचिरकाल में ही जिस किसी रूप में भगवान् का अवतार होना चाहिये।

अब मैं भारतीय सनातन धर्मग्रन्थों के दिग्दर्शन से युग-परिवर्त्तन-संबन्धी विचार का संक्षेप में उल्लेख करता हूँ।

प्राचीन धर्मग्रन्थों में वेद सबसे विशेष प्रामाणिक माना गया है। इसके परे स्मृति, रामायण, महाभारत तथा पुराणों को क्रमिक प्रमाण में ग्रहण किया गया है। इसलिये सर्वप्रथम वेद का ही एक प्रमाण लिखता हूँ—

'शतं तेयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्तेनुमन्यन्तामहृणीयमानाः॥'

इस मंत्र का सायण भाष्य इस प्रकार है :—

हे बालक तव शतं हायनान्, शतसंख्यकान्, शतायुः पुरुषः (तै० ब्रा० १।७।६।२) इति श्रुतिविहितान् अयुतं, अयुतसंख्यकान् कृण्मः कुर्मः। हे बालक ते शतं हायनान् कृण्मः तानेव अयुतं च हायनान् कृण्मः। द्वे युगे कृण्मः। त्रीणि च युगानि कृण्मः। चत्वारि युगानि कृण्म इति। अयमभि-प्रायः—

तव प्रथमक्रियमाणसंस्कारविशेषेणसर्वमनुष्यसाधारणान् शत-संवत्सरान् कुर्मः। तानेव अयुतसंख्यकान् कुर्मः। चतुर्णां युगानां सन्धि संवत्सरान् विहाय युगचतुष्टयस्य मिलित्वा अयुतं संवत्सराः स्युः। तान् विभज्य द्वे—कलिद्वापराख्ये, त्रीणि त्रेतासहितानि, चत्वारि कृतयुग सहितानि कुर्म इति आशास्यते।

उपर्युक्त मंत्र किसी आचार्य ने अपने शिष्य के प्रति आशीर्वाद रूप से प्रयुक्त किया है। यहाँ संधि और संध्यंश को छोड़कर चारों युगों का मान दस हजार वर्ष कहा गया है। उसमें भी प्रथम कलियुग का ही प्रसंग होने से, क्रम से कलि ४०००, द्वापर ३०००, त्रेता २००० तथा सत्ययुग १०००। सब मिलाकर १०,००० वर्ष हुए। प्रति हजार की संधि १०० और संध्यंश १०० अर्थात् २०० होने से दश हजार की संधि संध्यंश दो हजार वर्ष होते हैं। इस प्रकार संधि और संध्यंश के योग से चारों युगों का मान १२,००० वर्ष होता है। तो इस वैदिक प्रमाण से बारह हजार वर्षों में चारों युग समाप्त हो जाते हैं। यहाँ ध्यान देने की एक बात यह भी है कि ये वर्ष मनुष्य वर्ष के मान से ही कहे गये हैं। कहीं भी दिव्य या देववर्ष की चर्चा नहीं है। इसकी 'शतायुः पुरुषः' (तै० ब्रा० १।७।६।२) इस श्रुतिवाक्य से और भी

पुष्टि होती है, क्योंकि किसी भी मनुष्य की आयु देववर्ष से सौ वर्ष नहीं होती।

लोगों की यह धारणा कि चारों युगों का मान इतना स्वल्प काल कैसे हो सकता है, वह तो लाखों वर्षों का होना चाहिये ; यह कोई विशेष इष्टापत्ति नहीं। बारह हजार वर्ष भी कुछ कम समय नहीं। इसमें असीम परिवर्त्तन हो जाते हैं। नालन्दा, तक्षशिला आदि का अभी जीर्णोद्धार होने पर धरती के पुरसों नीचे जो इमारतें पायी गयी हैं वे सत्ययुग-त्रेता की नहीं, प्रत्युत इसी कलियुग के डेढ़-दो हजार वर्षों के भीतर की हैं। किन्तु इतने ही दिनों के अरसे में ये विशाल इमारतें भूगर्भ में विलीन हो गयीं। इसके प्रतिकूल सत्ययुग का पुष्कर तीर्थ तथा समुद्रमन्थन जिस मन्दर पर्वत के द्वारा हुआ था सो पर्वत वासुकिनाग से वेष्टित घर्षणचिह्नसहित, अभी भी दक्षिण भागलपुर में विद्यमान है। त्रेता के अयोध्या के प्रसिद्ध स्थान, द्वापर के मथुरा-वृन्दावन-स्थित पुण्य स्थान तथा हस्तिनापुर के प्रस्तर राज-प्रासादों के भग्नावशेष, द्रौपदीकुंड आदि अभी भी स्मारक रूप से वर्त्तमान हैं। यदि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर के लाखों वर्ष बीत गये होते तो अभी उक्त स्मारकों की रूपरेखा भी प्रायः नहीं रह जाती। अति प्राचीनतीर्थ काशी में, काशीखंड के अनुसार अभी भी अनेक स्थान विद्यमान हैं। इससे सिद्ध होता है कि चारों युग लाखों वर्षों के नहीं, बारह हजार वर्ष के ही होते हैं। और अथर्ववेद के उपर्युक्त प्रमाणानुसार कलि की आयु की संधि तथा संध्यंश मिलाकर ४८०० वर्ष बीत चुके हैं। अब सत्ययुग की संधि चलती हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उपर्युक्त युगों के श्रुतिक्रम, स्मृति-पुराणादि में उल्लिखित युगों के क्रम तथा मान से व्यतिक्रम देखा जाता है। शास्त्रविधानानुसार श्रुति एवं स्मृति में विरोध भासित होने पर, विरोध-परिहार के लिये श्रुति को ही मान्यता देना उचित है। अस्तु तावत्, उपर्युक्त द्वैविध्य होने पर भी चारों युगों का पूर्ण मान बारह हजार वर्ष है, जो बीत चुका है और अब एक विलक्षण नवीन युग आने वाला है जिसके विषय में भविष्यवाणियों का सत्ययुग नाम से प्रचार है। इसकी पुष्टि भक्त सूरदासजी की भविष्यवाणी से भी होती है, यथा—

'सहस्र वर्ष लगि सतयुग बीते धर्म की बेल बढ़े।'

कलि की आयु के विषय में बंगीय साहित्य में जगद्‌बन्धु महाप्रभु की वाणी है कि कलि की अवधि पाँच हजार वर्ष मात्र है, जो पूर्ण हो रही है। और उसी साहित्य में यह भी कहा गया है कि सहस्र वर्ष पर्यन्त प्रभु की लीला चलेगी, जिसका अभिप्राय होता है कि उक्त हजार वर्ष का समय सत्ययुगीय रहेगा।

अब मैं मनुस्मृति के आधार पर युग के प्रमाण को बताना चाहता हूँ। प्रथम विचारणीय विषय तो यह है कि किसी बड़े पदार्थ के मान को ज्ञात करने के लिए पहले छोटे मान से काम लिया जाता है। जैसे पैसे से रुपये का, छटाक से सेर, पसेरी फिर मन का मान जाना जाता है, वैसे ही पल-विपल से आरंभ कर फिर दिन, पक्ष, मास, वर्ष तथा युग का मान जाना जाता है। अतः पर उसी अनुपात से पितर, देवता, ब्रह्मा के अहोरात्र, मन्वन्तर एवं सृष्टि से प्रलय पर्यन्त के समय का मान ज्ञात किया जाता है। यहाँ मनुस्मृति में कथित समय के मान का प्रमाण लिखा जाता है। उसमें मनुष्य के निमेष, कला-काष्ठादि छोटे मान को लेकर मन्वन्तर पर्यन्त बड़े मान का हिसाब लगाया गया है। किन्तु आश्चर्य है कि जब युगों के मान का प्रकरण आया है तब वहाँ मनुष्य वर्ष को छोड़ देवता के वर्ष से युगों का मान टीकाकारों ने लिख दिया है, जिससे बारह हजार वर्ष के बदले लाखों वर्ष के चतुर्युग हो जाते हैं। यह कहाँ तक युक्तिसंगत है यह ग्रन्थ के मूल वाक्यों पर ध्यान देने पर अनायास समझा जा सकता है।

अब मूल श्लोकों का उल्लेख किया जाता है—

मनुस्मृति अध्याय १

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः।
त्रिंशत् कला मुहूर्त्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥६४॥

१८ निमेष (पल) की १ काष्ठा, ३० काष्ठाओं की १ कला, ३० कलाओं का १ मुहूर्त्त और उतने ही (३०) मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र (दिन रात) होता है।

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥६५॥

मनुष्य तथा देवता के अहोरात्र का विभाग सूर्य से ही होता है। प्राणियों के सोने के लिये रात्रि और काम करने के लिये दिन होता है।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥६६॥

मनुष्यों का एक मास पितरों का एक अहोरात्र होता है, जिसमें कृष्ण पक्ष उनका दिन और शुक्ल पक्ष उनकी रात है।

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥६७॥

मनुष्यों का एक वर्ष देवता का एक अहोरात्र होता है। छः महीने का उत्तरायण तो उनका दिन और छः महीने का दक्षिणायन उनकी रात्रि है।

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः।
एकैकशो युगानान्तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥६८॥

ब्रह्मा के दिन-रात का मान तथा एक-एक करके युगों का मान संक्षेप से मैं कहता हूँ, उसको सुनो।

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम्।
तस्य तावत् शती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥६९॥

चार हजार वर्षों का सत्ययुग होता है। उसका उतना ही सौ अर्थात् चार सौ वर्ष संध्या और चार सौ वर्ष संध्यांश होता है। युग के पूर्व चार सौ वर्ष संध्या और पर के चार सौ वर्ष संध्यांश हैं।

इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥७०॥

सत्ययुग से भिन्न त्रेता, द्वापर, कलियुग में क्रमशः एक एक हजार और एक एक सौ वर्ष कम होता जायगा। अर्थात् त्रेता तीन हजार; संध्या और संध्यांश तीन सौ वर्ष। द्वापर दो हजार; संध्या और संध्यांश दो दो सौ वर्ष, तथा कलि एक हजार; संध्या और संध्यांश एक एक सौ वर्ष।

यदेतत् परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥७१॥

इस पर कुल्लूक भट्ट विरचित मुक्तावली टीका, यथा :—

एतस्य श्लोकस्यादौ यदेतत् मानुषं चतुर्युगं परिगणितं एतद् देवानां युगमुच्यते। चतुर्युगशब्देन संध्यासंध्यांशयोरप्राप्तिशंकायाभाह एतद्द्वादशसाहस्रमिति। चतुर्युगैरेव द्वादशसंख्यैर्दिव्ययुगमिति मेधातिथेर्भ्रमो नादर्त्तव्यः। मनुनानन्तरं दिव्ययुगसहस्रेण ब्रह्माहस्याप्यभिधानात्।

इस श्लोक के आदि में मनुष्य के जो चार युग कहे गये हैं उनको ही देवता का एक युग कहा गया है, जो संध्या और संध्यांशसहित बारह हजार वर्षों का होता है। यहाँ कुल्लूक के पूर्व टीकाकार मेधातिथि ने अर्थ लगाया था कि बारह चतुर्युग से देवता का एक युग होता है, सो उनका (मेधातिथि का) भ्रम है। यहां स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य के चारों युग, जो मनुष्य-वर्ष से ही बारह हजार वर्षों के होते हैं, देवता का एक युग है। मनुष्य के इसी बारह हजार वर्षों वाले चतुर्युग को टीकाकारों ने ३६० से गुणित कर दिव्य वा देवता के वर्ष के मान से, १२००० × ३६० = ४३,२०,००० तेतालीस लाख बीस हजार वर्षों का कहा है, यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। यह भी लक्ष्य करने की बात है कि देवता के वर्ष का मान कहीं नहीं कहा गया है। उनके केवल दिन तथा युग के ही मान कहे गये हैं। कुल्लूक ने जैसा कहा है कि मेधातिधि को भ्रम हुआ वैसा ही अन्य टीकाकारों को भी भ्रम हो सकता है और उसी गतानुगतिक भ्रम के परिणामस्वरूप उपर्युक्त युगमान में वैषम्य है।

दैविकानां युगानान्तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च ॥७२॥

देवता के एक हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है और उतने की ही उनकी (ब्रह्मा की) रात्रि होती है।

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः।
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥७३॥

देवता के उन्हीं हजार युगों का ब्रह्मा का एक पुनीत दिन तथा उतने की ही उनकी पुनीत रात्रि है। इसी प्रकार गणितज्ञ विद्वान,

मनुष्य के उपर्युक्त निमेषादि छोटे मान से ब्रह्मा के सुदीर्घ अहोरात्र के मान का हिसाब लगाते हैं।

यत् प्राग् द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम्।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥७४॥

पूर्व जो कह आये हैं कि बारह हजार वर्षों का देवता का एक युग होता है, उसी देवयुग से ७१ युगों का एक मन्वन्तर होता है। अर्थात् उतने ही समय तक एक मनु का शासनाधिकार रहता है। इसके पश्चात् मनु बदल जाते हैं। उनके स्थान में दूसरे आ जाते हैं।

कुल्लूक भट्ट के उपर्युक्त ७१ श्लोक की व्याख्या में जो कहा गया है कि 'मनुनानन्तरं दिव्ययुगसहस्रेण ब्रह्माहस्याप्यभिधानात्' सो मनुष्य के वही बारह हजार वर्षों वाला जो देवता का एक युग, उसी मान से ७१ देवयुगों में एक मन्वन्तर तथा उसी देवयुग के मान से हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है।

पूर्व ही कहा जा चुका है कि छोटे पदार्थों से बड़े पदार्थ के मान का ज्ञान कराया जाता है। वही क्रम ऊपर स्मृति के वचनों में दिखाया गया है कि मनुष्य के निमेष से आरंभ कर मन्वन्तर तथा ब्रह्मा के अहोरात्र पर्यन्त समय की गणना की गयी है। तब मनुष्य के युग का मान समझाने के लिये देवता के वर्ष से गणना करना—उपस्थित नैसर्गिक अनुपातक्रम को त्याग कर कृत्रिम अनुपातक्रम की कल्पना करना, प्रमाण योग्य नहीं। मनुष्य-वर्षों से ही मानुष युग का मान कहना उचित है। देवता के वर्ष की मूल श्लोक में कहीं चर्चा भी नहीं है, न देवता का वर्ष होना ही संभव है, क्योंकि उनका अहोरात्र मनुष्य के एक वर्ष में होता है। उस मनुष्य वर्ष में दो अयन, उत्तरायण तथा दक्षिणायन, प्रत्येक छः महीने का होता है। द्वादश राशियों में सूर्य के निरन्तर चक्कर लगाने से छः ऋतुओं का बारह महीनों में भोग होने पर एक वर्ष की पूर्त्ति होती है। देवलोक में छः महीने का दिन और उतने की ही रात होने से छः ऋतुवाला वर्ष होना भी संभव नहीं। वहाँ चार युग भी संभव नहीं, क्योंकि तब तो देवलक में भी कलियुग का प्रभाव पड़ेगा, सो भी अयुक्त है। चार युग भारतवर्ष में ही होते हैं।

इसका प्रमाण मत्स्यपुराण अध्याय १८ में इस प्रकार है—

'चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥'

तथा श्रीमद्भागवत स्कंध ३।११।२१ में—

'धर्मश्चतुष्पान्मनुजान् कृते समनुवर्त्तते ।'

चार पाद वाला धर्म सत्ययुग में (तथा उत्तरोत्तर हीन पाद वाला धर्म त्रेतादि युग में) मनुष्य का होता है।

एतावता मनुष्य के वर्ष से ही युग के मान की व्यवस्था ठीक है।

महाभारत वनपर्व अ० ११८ में युगों का जो मान कहा गया है वह भी मनुष्य-वर्ष से ही है। कहीं भी 'दिव्य' वा 'देवता के वर्ष' शब्द की चर्चा नहीं है। यथा—

'चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ।
तस्य तावच्छतो संध्या संध्यांशश्च ततः परम् ॥
तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिमाणतः ।
तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥
सहस्रमेकं वर्षाणां ततः कलियुगं स्मृतम् ।
तस्य वर्षशतं संधिः संध्यांशश्च ततः परम् ॥
संधिः संध्यांशयोस्तुल्यं प्रमाणमुपधारय ।
क्षीणे कलियुगे चैव प्रवर्त्तति कृतं युगम् ॥
एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्त्तिता ।
एतत् सहस्रपर्यन्तमहो ब्राह्ममुदाहृतम् ॥'

पुराणों में भी युग का मान मनुस्मृति तथा महाभारत के अनुसार ही कहा गया है। मूल में क्वचित् स्थानों में दिव्य शब्द का प्रयोग है, जिसको टीकाकारों ने देवता का वर्ष मानकर युग का मान लाखों वर्ष कर दिया है। वह दिव्य वा देवता का वर्ष, मनुष्य-वर्ष को ३६० से गुणित कर बना लिया गया है। इस दृष्टान्त से कि ३६० दिनों का एक मनुष्य वर्ष होता है और वह वर्ष देवता का एक दिन है, तो उसको उसी प्रकार ३६० से गुणित करने से देवता का वर्ष

बन जाता है। किन्तु यह प्रक्रिया अनैसर्गिक है, क्योंकि उपपत्ति-पूर्वक पूर्व ही कहा जा चुका है कि देवता का मनुष्य के जैसा वर्ष नहीं होता।

दिव्य शब्द के अर्थ को लेकर युगमान में कैसे अनर्थ उपस्थित हो गया है उसकी कुछ आलोचना यहाँ कर्त्तव्य है।

ज्योतिषशास्त्र में सूर्यसिद्धान्त नाम का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है और उसी के अनुसार ज्योतिष की गणनाएं की जाती हैं। उक्त ग्रन्थ में समय का कतिविध मान का उल्लेख है। यथा—

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव॥

ब्राह्म—ब्रह्मा का एक दिन है जिसको कल्प कहते हैं।

दिव्य—देवता का एक दिन है जो मनुष्य के एक वर्ष के तुल्य है।

पित्र्य—मास की ३० तिथियों का मान है।

प्राजापत्य—मनुसंबन्धी कालगणना के लिए है।

गौरव—मध्यगति की भभोगादि ज्योतिष गणना के लिए है।

आर्क्ष—नक्षत्रसंबन्धी ज्योतिषगणना के लिए है।

सौर, सावन और चान्द्र ये तीन प्रकार के मास हैं जो प्रचलित धार्मिक कार्यों में उपयोगी हैं। यथा विष्णुधर्मोत्तर ग्रन्थे—

'आब्दिके पितृकृत्ये च मासश्चान्द्रमसः स्मृतः।
विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनो मतः॥'

वार्षिकादि पितृकृत्य में चान्द्रमास प्रशस्त है, विवाहादि शुभकार्यों में संक्रान्तिवाला सौर मास तथा यज्ञादि देवयजन कार्यों में सावन मास प्रशस्त है।

सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार—१३

'ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदहरुच्यते॥'

दिव्यं देवानां संबन्धि अहः दिनमुच्यते। द्वादशसौरमासा देवानामहोरात्रमिति।

दिव्य देवता के दिन को कहते हैं, जो मनुष्यों के बारह सौर मास का होता है। यही सूर्यसंबन्धी संक्रान्तिवाला सौर मास का वर्ष प्रकृत दिव्य वर्ष है।

ज्योतिःशास्त्र के मान ग्रहादिकों के राश्यादिज्ञानार्थ एवं तत् सहायकरूप भगणों के पठन के लिए हैं।

उक्त सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिष-ग्रन्थों में कलियुग का वर्षमान ४,३२,०००, द्वापर का ८,६४,०००, त्रेता का १२,९६,००० तथा सतयुग का १७,२८,००० एवं सब का पूर्ण योग ४३,२०,००० वर्ष कहा गया है।

ज्योतिष पंचांगों में उपर्युक्त क्रमानुसार ही युगों के मान लिखे जाते हैं और तदनुसार ही लोग नित्य का संकल्प भी करते हैं, अतएव अत्यधिक प्रचार के कारण युगों का मान लाखों वर्ष का होना लोगों के संस्कार में सुदृढ़ हो गया है।

दिव्य वर्ष प्रयुक्त ही इतना बड़ा मान होजाता है। मनुष्य वर्ष के उदाहरण से ३६० से गुणित कर दिव्य वा देववर्ष माना गया है। मनुस्मृति,-महाभारतादि ग्रन्थों में कथित चारों युगों का मान १२,००० को तदनुसार ही ३६० से गुणन करने पर ४३,२०,००० वर्ष होते हैं। ये वर्ष दिनपरक अर्थात् दिनबोधक होने से ४३,२०,००० को ३६० से भाग देने पर फिर वही १२,००० वर्ष हो जाते हैं। दिनपरक वर्ष भी होता है जो निम्नलिखित वाल्मीकीय रामायण के उपाख्यान तथा कृष्णयजुर्वेद के सूत्र एवं भाष्य से प्रमाणित होता है।

वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ७३

'अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षसहस्रकम्।
अकाले कालमापन्नं मम दुःखाय पुत्रक॥'

इस पर प्रचलित प्रामाणिक रामाभिरामी टीका, यथा—

'अथ मृतबालकब्राह्मणस्य राजद्वारे विलापः प्रस्थाप्येति। हे पुत्रक अप्राप्तयौवनं मम दुःखाय अकाले कालमापन्नं पश्यामी-त्यनुषंगः। पंचवर्षसहस्रकं, वर्षशब्दोऽत्र दिनपरः। सहस्रसंवत्सरं सत्रमुपासीतेतिवत्। तेन किंचित् न्यूनचतुर्दशवर्षमित्यर्थः।'

वाल्मीकीय रामायण में कथा का प्रसंग इस प्रकार है—किसी ब्राह्मण का लड़का मर गया। वह श्रीरामचन्द्र महाराज के राजद्वार पर शव ले जाकर रो कर कहने लगा कि मैंने तो कोई पाप नहीं किया; कथंचित् राजा के पुण्य-पाप से प्रजा पर उसका प्रभाव पड़ता है। तो किस पाप के परिणाम से मेरा यह पांच हजार वर्ष मात्र का बालक, युवावस्था प्राप्त किये विना ही अकाल में मर गया ?

यहां विचारने की मुख्य बात यह है कि किसी भी युग में पांच हजार वर्ष वयस्क कोई भी मनुष्य बालक नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा बालक मान लिया जाय तो उसकी पूर्णायु कोई तीस हजार वर्ष से कम तो नहीं होनी चाहिये जो असंभव है। किसी शास्त्र में किसी युग में मनुष्य की उतनी दीर्घायु उल्लिखित नहीं है। इसीलिए टीकाकार ने वर्ष शब्द का यहाँ दिन अर्थ किया है। 'सहस्रसंवत्सरं सत्रमुपासीत' अर्थात् हजार वर्षों तक सत्र—यज्ञविशेष को करना। यहाँ संवत्सर शब्द दिनवोधक ही है क्योंकि किसी मनुष्य के जीवन में सहस्र वर्षों तक सत्र का सम्पादन करना संभव नहीं। इसलिये उपर्युक्त पाँच हजार वर्ष है पाँच हजार दिन का वाचक। ऐसा होने से ५००० ÷ ३६० = १३ वर्ष १० मास २० दिन, अर्थात् चौदह वर्ष वयस्क बालक होना समीचीन है। उपर्युक्त प्रमाण की पुष्टि में पुनः दूसरा प्रवल प्रमाण देता हूँ—

कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण, काण्ड ३, प्र० १२, अनु० ६।

'पंचपंचाशतास्त्रिवृतः संवत्सराः' इत्यादि।

इस पर जैमिनीय मीमांसा सूत्र अ० ६ पाद ७ अधि० १३—

'अहानि वाऽभिसंख्यत्वात्।'

इस पर न्यायमाला तथा सायणभाष्य, यथा—

'संवत्सरशब्दो दिनपरः।'

अर्थात् संवत्सर (वर्ष) का अभिप्राय यहां दिन है।

उपर्युक्त मीमांसा वचन के अनुसार दिनपरक वर्ष के अनुपात से चारों युगों का मान ४३,२०,००० वर्ष नहीं किन्तु १२,००० वर्ष ही सिद्ध होता है और तब शास्त्रीय वचन-विरोध का भी परिहार हो जाता है।

उपर्युक्त समीक्षा के समर्थन में एक लौकिक प्रमाण का भी निर्देश करता हूँ, जो सर्वथा सबको स्पष्ट युक्तियुक्त प्रतीत होगा।

तुलसीकृत मानस रामायण की बड़ी जिल्दवाली पुस्तकों में सूर्यवंश के कुलवृक्ष का चित्र संलग्न रहता है। उसको देखने से पता चलता है कि इक्ष्वाकु आदि पूर्वजों के पश्चात् श्रीरामचन्द्र से सुमित्र तक ६१ राजाओं की पीढ़ियां हैं। ततः पर उसी शृंखलानुसार अन्य समसूत्र भी प्राप्त है। राजस्थान जयपुर के महाराज भी उसी सूर्यवंश के हैं। उनकी क्रमागत वंशावली धारा अबतक चल रही है। उससे पता लगता है कि सुमित्र के पीछे १७० राजा होते चले आये हैं। और श्रीरामचन्द्र से लेकर वर्त्तमान महाराज मानसिंह तक कुल २३१ पीढ़ियां होती हैं। प्रत्येक राजा के ४० वर्षों के माध्यमिक अनुपात से कुल ६००० वर्ष के लगभग समय होता है।

वर्त्तमान गणना से कलियुग के प्रायः ५००० वर्ष बीत चुके। इसके पहले द्वापर युग था जो पंचांगों के आधार से ८,६४,००० वर्षों का था। उसके पूर्व त्रेतायुग तो ६ लाख वर्षों से भी कहीं अधिक हो जाता है! ६-१० लाख वर्षों में केवल २३१ पीढ़ियां होना कैसे संभव है, यह विशेष विचारणीय विषय है। दिव्य वा देवता के वर्ष कीं निराधार कल्पना कर लाखों वर्षों का युग बताना सर्वथा असंबद्ध है।

अब पुराणों में कथित कलियुग की आयु के भोग का वर्षमान यहाँ अतिसंक्षेप से उद्धृत करता हूँ—

श्रीमद्भागवतस्कंध १२, अध्याय २

आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाऽभिषेचनम्।
एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम् ॥२६॥

श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि हे राजा परीक्षित्! तुम्हारे जन्म से लेकर जब तक नन्द राजा का अभिषेक होगा तब तक १११५ अथवा १५१० वर्ष बीतेंगे। इसके बाद मौर्य चन्द्रगुप्त, अशोक, हर्षवर्द्धन आदि राज्य करेंगे। पीछे यवन (सिकन्दरादि), तुरुष्क (महमूद गजनी आदि) तथा बाबर आदि मुगल राज्य करेंगी। इसके बाद

गुरुण्ड राज्य करेंगे। गुरुंड के बाद मौन तथा आन्ध्र, कौशल इत्यादि खंड मंडलवर्त्ती राज्य करेंगे।

एक तो गुरुंड (अंग्रेज) के बाद अब व्यक्तिगत राजा कोई नहीं। अब तो सर्वत्र गणतंत्र राज्य है। इसके अतिरिक्त भारत का विभाजन होकर पाकिस्तानी राज्य हो गया है जिस वैषम्य का उल्लेख नहीं है।

दूसरी बात यह कि भागवत में जितने राजाओं का तथा समय का निर्देश है उससे ज्ञात होता है कि कुल राजाओं की संख्या प्रायः २०० से अधिक नहीं। उनके राज्य का समय जितना कहा गया है वह लगभग ४००० वर्ष के होता है। नन्दराजा के पूर्व बृहद्रथ, प्रद्योत, शिशुनाग आदि के १११५ वर्ष का योग करने से लगभग पाँच हजार वर्ष होते हैं। यहाँ तक तो इतिहास-क्रम से समावेश किया जा सकता है; किन्तु इसके बाद किसी राजा, यथा मौन, आन्ध्र, कौशलादि का होना संभव नहीं और जितने राजाओं का वर्णन किया गया है उनका राज्यकाल, चार लाख बत्तीस हजार वर्ष, अर्थात् जब तक पंचांगोक्त कलियुग बीतेगा, कैसे हो सकता है!

भविष्यपुराण में अनेक अतिरंजित बातें कही गयी हैं, जिस पुराण को लोग बहुत चाव और कौतूहल से पढ़ते हैं। भविष्यपुराण के चतुर्थ खंड में कलियुगी इतिहास के प्रसंग में अध्याय १२ में लिखा है कि तिमिरलंग (तैमूर लंग), बाबर, हुमायूँ, अकबर, सलोमा (सलीम), नवरंग (औरंगजेब), शिवाजी महाराष्ट्री, आलोम (आलमगीर) और उनके पश्चात् गुरुंडों (अंग्रेजों) के, जो वाणिज्य के लिये भारत में आये थे, कलिकाता (कलकत्ता) नगर में राजधानी बनाकर अष्टकौशल (पार्लियामेन्ट) द्वारा सात राजाओं ने ६४ वर्ष राज्य किया। विक्रमाब्द १८०० से २४०० तक यह राज्य रहा। उसके बाद मुरवंशीय राजा हुए। गुरुंड लार्ड ले के बाद मकरन्द, मौन, तब अनेक आन्ध्र, सौराष्ट्र, गुर्जर देशों के राजाओं का वर्णन है। किन्तु गुरुंड के पश्चात् तो गणतंत्र राज अभी चल रहा है। अब व्यक्तिगत राजा कोई और कहीं नहीं। उक्त भविष्यपुराण में जितने राजाओं का उल्लेख है उससे भी चार लाख बत्तीस हजार वर्ष के समावेश की संभावना नहीं।

अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ मुगल साम्राज्य के पतन तथा

अंग्रेजी राज्य के प्रारंभ काल में संकलित हुआ है। इसी से इसमें पृथ्वीराज आदि हिन्दू राजा तथा मुगल राजाओं से लेकर लार्ड ले (ईस्ट इंडिया कंपनी, लार्ड क्लाइव) आदि के राजत्व का वर्णन पाया जाता है। अथवा उक्त पुराण में यह कलियुगीय इतिहास पीछे से जोड़ दिया गया है।

अब मैं महाभारत वनपर्व अध्याय १६० के अनुसार, कलि, कलि के क्षय तथा पुनः सत्ययुग के आगमन के लक्षण, संक्षेप में कहकर उपक्रमित वक्तव्य का उपसंहार करना चाहता हूँ।

युधिष्ठिर उवाच—

अस्मिन् कलियुगे त्वस्ति पुनः कौतूहलं मम।
समाकुलेषु धर्मेषु किन्तु शेषं भविष्यति॥
किंवीर्या मानुषास्तत्र किमाहारविहारिणः।
किमायुषः किंवसना भविष्यन्ति युगक्षये॥
कां च काष्ठां समासाद्य पुनः संपत्स्यते कृतम्।

मार्कण्डेय उवाच—

लोभक्रोधपरा मूढाः कामासक्ताश्च मानवाः।
वैरबद्धा भविष्यन्ति परस्परवधैषिणः॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः संकीर्त्तयन्तः परस्परम्।
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपःसत्यविवर्जिताः॥
अन्त्या मध्या भविष्यन्ति मध्याश्चांत्या न संशयः।
म्लेच्छभूतं जगत् सर्वं निष्क्रियं यज्ञवर्जितम्॥
न कन्यां याचते कस्मिन् नापि कन्या प्रदीयते।
स्वयंग्राहा भविष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥
स्वैराचाराश्च पुरुषा योषितश्च विशाम्पते।
अन्योन्यं न सहिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते॥
अकालवर्षी पर्जन्यो भविष्यति गते युगे।
निर्विशेषा जनपदास्तथा विष्टिकरार्दिताः॥
उल्कापाताश्च बहवो महाभयनिदर्शकाः।
ततः कालान्तरेऽन्यस्मिन् पुनर्लोकविवृद्धये॥

भविष्यति पुनर्दैवमनुकूलं यदृच्छया।
यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती॥
एकराशौ समेष्यन्ति प्रपत्स्यति तदा कृतम्।
कालवर्षी च पर्जन्यो नक्षत्राणि शुभानि च॥
प्रदक्षिणा ग्रहाश्चापि भविष्यन्त्यनुलोमगाः।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं भविष्यति निरामयम्॥

राजा युधिष्ठिर मार्कण्डेय ऋषि से पूछते हैं कि इस कलियुग के विषय में मुझे पुनः जानने का कौतूहल है कि धर्म पर आपद् आने पर फिर क्या होगा?

उस समय मनुष्यों की कैसी शक्ति रहेगी तथा उनके आहार-विहार कैसे होंगे। उनकी आयु, वेशभूषा आदि युगान्त समय में कैसी होगी और किस समय और कैसे फिर सत्ययुग आवेगा?

इस प्रश्न के उत्तर में ऋषि मार्कण्डेय जी कहते हैं—कलियुग में धर्म का ह्रास होने पर मनुष्य लोभ-क्रोधयुक्त, विवेकहीन तथा कामासक्त होंगे। परस्पर वैरभाव तथा वध करनेवाली प्रवृत्ति के होंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये परस्पर सम्मिलित होंगे, अर्थात् इनमें जाति का कोई भेदभाव नहीं रहेगा। सब शूद्रतुल्य तथा तप और सत्य से रहित हो जायंगे। अन्तवाले मध्य तथा मध्यवाले अन्तिम वर्ग के हो जायंगे। सारे जगत् के लोग म्लेच्छभावापन्न तथा क्रिया कलाप यज्ञादि अनुष्ठान से वर्जित होंगे। युग के अन्तिम समय में न कोई किसी से कन्या की याचना करेगा और न कोई कन्या प्रदान करेगा। वर-कन्या स्वयं अपनी पसन्द से अपने विवाह का सम्पादन करेंगे। पुरुष तथा नारी दोनों स्वेच्छाचारी होंगे। एक दूसरे का सहयोग नहीं रखेंगे। अकाल में मेघ की वृष्टि होगी। जनता के संघ की प्रबलता होगी तथा प्रजाजन कर के भार से पीसे जायँगे। सब दिशाएं प्रज्वलित हो उठेंगी। अनेक भयानक उल्कापात होंगे। उपर्युक्त सब लक्षण इस समय देखने में आ रहे हैं।

अतः पर क्या होगा सो आगे कहते हैं। फिर लोगों के कल्याणार्थ परमात्मा की इच्छा से अनुकूल वातावरण स्वतः उपस्थित हो

जायगा। ऐसी परिस्थिति का योग कब और कैसे होगा, इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि—जब चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति का पुष्य नक्षत्र के साथ योग होगा तब सत्ययुग आ जायगा। तब नियत समय पर मेघ बरसेंगे, नक्षत्र अपने-अपने शुभ फल का प्रदान करेंगे। ग्रहों की प्रदक्षिणा अनुलोम होगी। तब सब प्रकार का कल्याण, सुभिक्ष, आरोग्य तथा रोगों का विनाश होगा।

कुछ लोगों की धारणा है कि चन्द्र, सूर्य और बृहस्पति का पुष्य नक्षत्र के साथ मिलन का उपर्युक्त योग तो प्रति बारह वर्षों में कर्क राशि में बृहस्पति के रहने से हो जाता है, इसलिये यह लक्षण एक उपलक्षण मात्र है, जो निर्दिष्ट अन्तिम कलि के अवसान तथा सत्ययुग के आरंभ काल में भी उपस्थित रहेगा। परन्तु यह धारणा अयुक्त है, क्योंकि उक्त 'यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती' इत्यादि वचन श्रीमद्भागवत स्कंध १२ अध्याय २ में भी अविकल वैसा ही है, यथा—

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती।
एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति तत्कृतम्॥

केवल अन्तिम चरण के पदविन्यास में नाम मात्र भेद, 'प्रपत्स्यति तदा कृतम्'—महाभारत में तथा 'तदा भवति तत् कृतम्'—भागवत में है।

इस श्लोक की व्याख्या श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी संपादित श्री वृन्दावन रंगमन्दिरस्थ पंडित भागवताचार्य द्वारा प्रकाशित ६ प्रकार की व्याख्यावाली भागवत पुस्तक में श्रीधरस्वामी कृत भावार्थ-दीपिका इस प्रकार है—

'यदा चन्द्रसूर्यबृहस्पतीनां पुष्यनक्षत्रे योगस्तदा तत् कृतयुगं भविष्यति। यद्यपि प्रतिद्वादशाब्दे कर्कराशौ बृहस्पतौ वर्त्तमाने द्वित्रास्वमावास्यासु तेषां त्रयाणामपि पुष्ययोगः संभवति तथापि तेषां सहप्रवेशोऽत्र विवक्षितः, समेष्यन्तीति वचनात्, अतो नातिप्रसंगः।'

जब चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति का पुष्यनक्षत्र के साथ योग होगा तब सत्ययुग होगा। यद्यपि प्रति बारहवें वर्ष में कर्क राशि में बृहस्पति के

रहने से तीनों का पुष्य योग हो जाता है तथापि यहां 'समेष्यन्ति' इस वाक्य से उनका एक साथ प्रवेश होना विवक्षित है। ऐसा योग प्रति बारहवें वर्ष में नहीं होता है। किन्तु एक साथ प्रवेश का यह योग संवत् २००० में आया। इस कारण प्रत्याशित सत्ययुग की नींव उक्त संवत्सर में पड़ गयी है, ऐसा प्रतीत होता है। तब उक्त संवत् से सत्ययुग के शुभलक्षण जो अबतक यथावत् उद्भासित नहीं हो रहे हैं इसका क्या कारण है ? इसके कारण अनेक हो सकते हैं।

प्रथम यह कि साम्प्रतिक ग्रहों की नभस्थिति तथा उनकी संचारगति का वेध परिशुद्ध न होने के हेतु समयमें थोड़ा व्यतिक्रम हो सकता है।

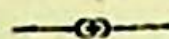
दूसरा यह भी हो सकता है कि कलियुग के संध्यांश का कदाचित् अबतक निःशेष रूप से पर्यवसान नहीं हुआ हो।

तीसरा आनुभविक दृष्टि से यह हो सकता है कि किसी भी निर्माण कार्य में विकृत जीर्ण शीर्ण पदार्थों को अपसारित करना आवश्यक होता है; जैसा हमने इस निबंध की भूमिका में वर्त्तमान विश्व की विकृत परिस्थिति तथा उसके परिमार्जन एवं नवीन उत्कृष्ट संगठन के निमित्त एक प्रखर परिवर्त्तन की आवश्यकता के विषय में कहा है, जो ध्वंसकारीलीला के बिना संभव नहीं हो सकता। अतएव ज्योतिषियों की गणना के अनुसार सन् १९६२ ई० में घोर युद्ध तथा उत्कट विप्लव संभावित है। महात्माओं की भविष्यवाणियों के अनुसार भी ध्वंसलीला समाप्त होकर प्रशान्त अवस्था आ जाने पर पुनः दिव्य संगठनमूलक कार्यों का सूत्रपात होने से उनके शुभ लक्षण स्वतः क्रमिक परिलक्षित होते जायंगे, और तब इस छोटे से निबन्ध में संगृहीत तथा संकलित भविष्यवाणियों की एकवाक्यता, सामंजस्य तथा चरितार्थता दृष्ट होगी। इसमें किसी वितर्क का प्रयोजन नहीं, क्योंकि परमात्मा की माया अचिन्त्य तथा अनिर्वचनीय है और वह अघटन-घटना-पटीयसी होने से असंभावित को भी संभावित कर सकती है। जैसा कि सिद्धान्तदर्शन प्रकृतिपाठ, प्रपाठ १ में कहा गया है :—

'अचिंत्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिंत्यस्य लक्षणम्॥'

अतएव तर्क-वितर्क का त्याग कर परम कारुणिक परमात्मा के शरणापन्न होकर, विश्वकल्याण के निमित्त निरन्तर प्रार्थना करते रहना ही हम सब का मुख्य कर्त्तव्य है।

ॐ शान्तिः ३



चतुर्थ खंड

अंग्रेजी-साहित्य से प्राप्त भविष्यवाणियाँ

A letter from Sri Aurobindo on the present situation.

"I am afraid, I can hold out but cold comfort for the present at least to those of your correspondents who are lamenting the present state of things. Things are bad, are growing worse and may at any time grow worst or worse than worst if that is possible—and anything however paradoxical seems possible in the present perturbed world. The best thing for them is to realise that all this was necessary because certain possibilities had to emerge aud be got rid of if a new and better world was at all to come into being; it wonld not have done to postpone them for a later time. It is as in Yoga where things active or latent in being have to be put into action in the light so that they may be grappled with and thrown ont or to emerge from latency in the depths for the same purificatory purpose. Also they can remember the adage that night is darkest before dawn and that the coming of dawn is inevitable. But they must remember too that the new world whose coming we envisage is not to be made of the same texture as the old one and different only in pattern and that it must come by other means, from within and not from without—so the best way is not to be too much pre-occupied with the lamentable things

that are happening outside but themselves to grow within so that they may be ready for the new world whatever form it may take."

July, 18, 1948. Sri Aurobindo.

Amrit Bazar Patrika 10th. August. 1949.

"Divine life in a Divine body"

Sri Arabindo's Formula of Ideal.

Pondichery 8th August, 1949,

A divine life in a divine body is the formula of the ideal we envisage, Says Sri Arabindo in the course of his message—article called the "Divine body" in the latest issue of the bulletin of Physical Education just published by the Ashram.

In it the Master throws much new light on the past achievements of India in that direction, reveals the deeper meaning of man's body, of its Spiritualised life in the future Visa-vis his Sex relations. The prolongation of the race and above all the evolution of the present body of man into a perfect and luminous one as the very end of nature's intention on it.

Sri Aurobindo further says "The human body has in it parts and instruments that have been sufficiently evolved to serve the divine life; these have to survive in their form, though they must be, still perfected, their limitations of range and use removed, their liability to defect and malady and impairment eliminated. their incapacities of cognition and dynamic action carried beyond the present limits, powers have to be acquired by the body which our present humanity

could not hope to realise. could not even dream of or could only imagine much that can now only be known, worked out or created by the use of invented tools and machinery, might be achieved by the new body in its own power or by the inhabitant Spirit through its own direct Spiritual force.

From the Kalpaka—Allahabad.

Quarterly Psycho—Occult Review.

January, Feb & March, 1952.

An Open Letter.

(By Miss Adele Were.)

Greetings !

By permission of our Master, the Christ, I have been given the privilege of writing to all our friends concerning some matters of vital importence at this time.

Although not allowed to divulge details regarding the events now hovering on the edge of their occurence, there are a few facts which will bear relating, even though you may have heard them before perhaps, from a number of different sources.

First and foremost is the fact that this is a time for 'team-work', a time to throw aside every prejudice and preconceived notion of what this one or that one is capable of feeling or doing. Give them the benefit of doubt and accept them at face value. If they are 'putting on an act' they will soon fade out of the picture.

A few who are not quite up to the required degree of intrinsic integrity of character will try to hang on but they cannot last long, as the cosmic Rays are 'strong medicine,' Another opportunity for earthly experience will be given them when their purpose has been strengthened sufficiently to permit their return to this rejuvenated planet.

Those who read this letter of friendly counsel have in all probability read considerable about the conditions conducive to one's progress in the higher grades of spiritual knowledge. This is a time when all true knowledge gained through past searching may be put to practical use and prove an unmitigated blessing. However, many who have acquired this knowledge not from books but from actual experience in meeting Life's problems and successfully solving them, will be given positions of great responsibility.

One thing I would like to emphasise and that is the fact (especially in the opening days of the New Dispensation) there should be no discrimination made between various types of service.

By this I mean, each and every one should be willing and happy to lend a hand in any sort of an emergency with any task which needs to be done, if they have the ability to do it, without regard to whether it is 'beneath their dignity' or 'right up their alley' or something they have never before attempted. Surprising new talents will be discovered in the most unexpected people and places. If this entire Recons-

truction Period, with its attendant changes, can be looked upon as one continuous Adventure, then it will yield the greatest possible satisfaction and promote a rapid growth of both mental and spritual understanding.

As you have been told, many marvelous new powers will be yours but it will take practice to learn to use them easily and effectively. At first it will be difficult to remember they are at your command......but once you test them out and find how wonderfully they serve your purpose, you will be thrilled beyond words.

All your attempt to do will be done so much more swiftly and with so much greater ease, you will feel your enthusiasm mounting higher and you will wish to extend your activities to include heretofore untired avenues of service to mankind.

By this means there will be added, constantly, new methods of acquiring an endless array of almost magical aids to the pleasure of living and so much more leisure to enjoy the blessings poured out so abundantly upon all mankind.

At long last, it will be proven beyond the shadow of a doubt that our Master spoke words of living truth when He said 'Seek ye first the Kingdom of God......and all these things shall be added unto you.' When God's Kingdom is actually established on this earth, then the most astounding thing (you have wished for but never expected to receive) will be right within your reach, for you will be striving to express the will of God in every act of their lives. Gradually

it will dawn on even the best enlightened of mortals that it is actually, as a plain matter of fact, 'more blessed to give than to receive.'

This will automatically bring into manifestation the Law of Recompense (so often in the past operating to man's detriment) – for 'with what measure ye mete, it shall be measured to you again.' Every single act, every task performed, will be done in the joyous consciousness that it is in some way contributing its small quota to the sum total of the world's peace, happiness and progress. With such a realization, no work can become monotonous drudgery—how could it ? You will not be building up or creating something today, to see it mutilated or destroyed tomorrow. Think how many disappointments and heartaches will be avoided when each effort made to add to the material comfort, the mental stimulation or the spiritual inspiration of mankind meets with the success it merits ;

Please bear in mind that you will not 'move into this heaven on earth all ready-made in its ultimate perfection. No, you will have the absolutely incomparable joy of helping to create this paradise, where the Divine Law of Love will operate in perfection where men will live in Light and our beloved Prince of Peace will rule and reign over this cleansed and purfied earth without a single dissenting voice to question His edicts.

When comes the time for this final Illumination and consequent Revealation of God's Purpose and

Plan for this world, then each living soul will know what it means to live in the consciousness of Divine Approval. This is the foundation of that Peace which passeth all understanding.

That is the goal of all over most exalted
hopes and dreams ;
This is the end of all which bear us
from God's Kingdom ;
This is the gateway to a future more
glorious than the mind of
Man is capable of imagining !

Thank God that you are eligible for citizenship in this New World, as you give your very bodies and souls into the keeping of Him who said of those with childish faith, 'Of such is the Kingdom of Heaven.'

In this childlike faith believe and accept His promise of New Heaven and a New Earth.'

Thank you for your patience and sympathetic hearing of my recital of Things-to-come !

Most sincerely yours
In the Master's service,
'C. N.'

'And it shall come to pass that the air shall be filled with an ethereal essence of Joy Surpreme, seeing there shall be laughter and music, the songs of birds and the fragrance of flowers......for all creation shall join in the Paean of Praise unto our Heavenly Father, whose will it be that all men should be as brothers in the New world and the earth should be a fit dwelling

place for all who love and serve the Christ, who cometh to redeem the world.

Amen ! Be it so !

Predictions of Mehar Baba, Sadhu of Ahmadnagr

In September, 1954 Mehar Baba, when describing his death (which has to be a violent one by means of assasination) stated that at that fatal moment, he would break his silence in the one word (Om). Then our planet is expected to give a shudder and the Great Disaster will occur. This Cosmic Catastrophe, as the Master has explained will force the *remaining one fourth* of humanity to come together in peace and amity and it will unite to bring about a Real Brotherhood of Man which will be the prelude to the Golden Age.

I must break my silence soon. A miraculous outpouring of Devine Love will deluge humanity, flooding every corner of the human heart, giving rise to a tremendous and universal upliftment which will aflect the whole Universe. This will be the awakening of the Heart Chakra on a Cosmic Scale.

"Abstract quoted from the book" Civilisation or Chaos "—A Study of the present world crisis in the Light of Eastern metaphysics"

By

J. H. Conybeare

Quotation from Bible.

"And there shall be signs in the Sun and in the Moon, and in the Stars; and upon the Earth distress

of nations, with perplexity, the *Seas and waves roaring.* Mens' hearts failing them for fear and for looking after those things which are coming on the Earth; for the *powers of Heaven shall be shaken. And then shall they see the Son of man coming in a cloud with power and great glory* And when these things begin to come to pass, then look up and lift up your heads; for your redemption draweth nigh."

Luke Ch. XXI, V. 25–28.

The above passage quoted from the holy Scripture revealed by Christ, the son of God, about two thoussnd years back, cannot but be the gospel truth in its entirety. The Sentence—"And there shall be Signs in the Sun and the Moon, and the Stars;" with respect to this passge the Astronomer Scientists have now[1] *discovered spots in the Sun* and in consequence thereof they attribute the lack of original eflulgence in the Sun and Moon. As to the passage "and upon the Earth distress of nations, with perplexty," it is quite obvious by the study of the critical situation in the world of today. The lustre of the Stars too are apparently fading. "Seas and waves roaring"—indicates the test exercises of the explosion of Atom and Hydrogen

1. Ref.—A. B. Patrika, Allahabad, 28th. March, 1958.

Giagantic Eruptions on Sun reported."

Kalegen-furt. (Austria, March, 24)

Giagantic Eruptions on the Sun were reported today by Scientists of the Austrian Kanzelhoche Sun Observatory, in the Carinthean Alps of south-east Austria. They sāid, the area of the sun aflected by eruptions was 20 times the size of the surface of the earth—(Reuter).

bombs now going on in the Seas and Oceans whereby the waters are greatly disturbed and millions of Sea lives perish indiscriminately.

At this critioal age there have been so many agitations and speedy revolutions in the World that the powers of Heaven have inevitably shaken and it indicates the impending drastic change in the Whole Universe. Now 'the Son of man coming on this Earth'—the above passage, has a unique significance in as much as in conformity with the Testamental authority Jesus has been identified as God's son but in the present evolution he identified humself as '*Son of man.*'

Cf:—Observation of Swami Vivekanand in his book, 'Realisation and its method'—'It is not only true that God made man after his own image but it is equally true that Man made God after his own image (imagination).

Cf:—Bengalee literature in this book, where it has been hinted about. भाव सृष्टि or the imaginative Creation of God by human beings for the wholesale emani—cipation of all living beings.

Political View on "War and Peace"

From A. B. Patrika of 14. 9. 57.

- Letter to the Editor.

Sir,—Please allow me to express my viewe through your esteemed daily on the modern matters of war and peace. To begin with let me trace the origin of war. Man wants to live in peace. but he is compelled to wage wars. To procreate is the most natural

instinct and that man wants to multiply faster than his means of subsistence was established by Malthus centuries ago and still holds good with the result that one nation's economic resources being shorter than what they should be to feed the overgrowing population, an imperialistic tendency, whether economic or political is given birth to only to grab others' resources. Thus the origion of war can be traced to the demographic maladjustments.

The above principle can well be substantiated by facts. Japan is a fertile nation, which is borne out by the facts that her population grew faster than that of a few other nations even when her soldiers were on the battle-field during the last world war. Hence her tendency to capture the world market and let others remain under the pressure of economic competition. Russia's population is growing unchecked at the fastest rate according to the U. N. report. America, the U.K. and France also do not lag behind. This race of population leads to war, since the rate of death being on the decrease in almost every country the growing numbers cannot be sustained.

Now, war being a necessity how peace–apparent or real can be brought about is the question which bafles all the thinking people. To be pragmatic, let me say that the U.K. and France tried to enter into Egypt through the back door and the catastrophe was averted only after the interference of Russia and India and the attitude of the U.S.A. The U.S.A. too has imperialistic leanings towards the Middle East. Her end is oil

and the extension of her influence, her means the Eisenhower Doctrine and her excuse safeguard against Communist subversion. Syria is about to become the centre of her belligerent activities. War may be averted only becanse Russia is ready to help Syria.

Oman is the greatest example of the U.K.'s imperialism, Examples can be multiplied to show that war becomes inevitable when any nation's population grows faster than the food supply and it can be averted and apparent peace can be established when some other nation is prepared to fight it.

In the Disarmament Sub Committee the U.S.A. became fastidious and proposed impossible conditions of settlement., when Russia spoke in a mild and compromising tone but the moment Russia's voice became stern after the test of I.C.B.M. the U.S A. paused to think to accommodate.

All this goes long way to bear out that in this warring world, peace cen be established either by checking the growing numbers or by letting the economic resources of one nation grow faster than or as fast as the population, or by being prepared to fight war. But to me. it seems that the first means is very dificult and the second means is impossible. Hence. under today's polical and economical sky, the only way left is the third.

Chandrasekhar Sharma

Jaunpur.

Discourses on Radhaswami Faith.

By Swami Brahmashankar (Huzoor Mahraj)
2nd. Edition, pages 284-86.

"In accordance with our theory the Spiritual current from the purely spiritual region will at no distant date become predominant in this world, when the central phase of the conjuction with the first grand division of creation takes place. All the troubles that we are now undergoing wiil disappear and a condition more ameliorating, joyous and blissful than that of Satyayuga will supervene. Spiritual powers which are now so hidden will be more manifest then, and without much trouble and dificulty success will be attained in spiritual training, and spiritual and internal experiences of the devotee will be so many and so frequent that he will have positive proof, during his life on this earth, of his true emanicipation and of his location in the spiritual region. When the spiritual regeneration and elevation have been eflected thus in the third grand division of creation the time for the great dissolution will come. By the time of its occurrence a very large number of entities will reach the region of pure spirituality and would become immortal for ever. The remaining entities and the creation of Brahmanda (ब्रह्माण्ड) and the third grand division will also be greatly benefited by the dissolution. A new cycle of creation will commence and the spiritual interest and the benefit of the two grand divisions of creation will again be guarded as in the previous cycle."

Extract from A.B. Patrika dated 17th. March, 1958.

Letter to the Editor by Sri N.K. Bose, Varanasi.

According to Ravan's Astrological Shutras on which I am researching, coupled with my experience in predictive astrology, I am to point out that the relations of planets with each other as are going to form during the early part of 1962 will sow the seed of the biggest destructions or war and that because of the Saturn along with the friends Mercury and Venus and with the full look of the Dragon's head being in its own house, the Capricorn and whereas the Jupiter being there indulging in evil advices having a fightening afliction with its deterrent enemy, the Mars who also would be fully helped by its friends, it seems inevitable that the greatest war or biggest destruction of humaan life and property due to various reasons, natural and un-natural, shall commence then. I do not think that that period when the above said aflictions will take place the World will go scotfree. In case it is said that during that period of the above-noted transitions nothing will take place then after the Saturn and the Jupiter move out of Capricorn the World will not have any major disaster. But it is possible that the situation in the world aflairs will start deteriorating and warlike activities will commence during the early period of the transitions, i. e. 1962 and gradualiy it will worsen and then come to an end in 1964 when the Jupiter will enter into its own house Pisces (Meen) and the Saturn will then move to its second house, the Aquarius (Kumbha) and the Dragon's head will then be quite jubilant in Gemini

(Methun). The respective planets as noted above will then make a good relation with the Capricorn which is the star of our country and as such our country during that relation shall get back its fame, prestige and lost property which means by the closing of the war India will get back a substantial portion of Pakistan if the whole of it does not merge into India. Thus the year 1964 may be very important.

Then again it is feared that a huge number of people will be wiped away from this world and there shall be serious type of outburst of fire accidents etc. etc. The year 1964 will be very prominent and an important one and I feel the conflagration will commence in 1962 when the relations with all the planets in Capricorn shall be straightened.

Extract from the Indian Nation, dated the 23rd. March, 1958.

By "Bear".

Swami Asimanand Saraswati, one of the greatest spiritual leader in Eastern India, as he himself said once. "For me, today, there exists no party, no creed, no coterie. All parties are mine—all creeds are mine. When people with faiths in different religions come closer to me, I feel at one with them, completely forgetful of my worldly existence...I discern Him today everywhere, feel a portion of His boundless grace and bow down my head in sincere devotion. Days are not far off when the world will ring with message of love, equality and universal fraternity and this holy chant will proceed from this very Bharat."



हिन्दू संस्कार

(सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन)

(राष्ट्रभाषा-संस्करण)

डॉ० राजबली पाण्डेय, एम० ए०, डी० लिट्०

(आचार्य, भारती महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

हिन्दू संस्कृति के अध्ययन की दिशा में यह महत्त्वपूर्ण देन है। माता के गर्भ में आने के समय से मृत्यु के समय तक और मृत्यूत्तर संस्कारों के माध्यम से उसके परवर्ती लोकोत्तर प्रयाण तक के हिन्दू जीवन को समझने के लिए यह ग्रन्थ कुञ्जी का काम देता है। हिन्दू जीवन के आदर्श, महत्त्वाकांक्षा, आशा और आशंका सभी मानसिक प्रक्रियाओं पर यह पर्याप्त प्रकाश डालता है। हिन्दुओं की सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं के विविध अंगों के रहस्य इससे स्पष्ट हो जाते हैं। मानव-जीवन बराबर रहस्यपूर्ण रहा है। उसका प्रादुर्भाव, विकास और तिरोभाव मानव-मन को बराबर आन्दोलित करते आये हैं। संस्कारों ने इस रहस्य की गम्भीरता को थहाने और प्रवहमान रखने में बराबर योग दिया है। हिन्दू जीवन को, एक प्रकार के मार्ग और पद्धति के रूप में, अक्षुण्ण रखने में संस्कारों का बड़ा हाथ है। वेदों से प्रारम्भ कर मध्ययुगीन और किन्हीं स्थलों में आधुनिक भारतीय साहित्य के अध्ययन के परिणाम इस ग्रन्थ में समाविष्ट हैं।

इस ग्रन्थ का विभाजन विषय-क्रम से दस अध्यायों में किया गया है: (१) अनुसंधान के स्रोत (२) संस्कार का अर्थ और संख्या (३) संस्कारों का उद्देश्य (४) संस्कारों के तत्त्व (५) जन्मपूर्व संस्कार (६) शैशव के संस्कार (७) शैक्षणिक संस्कार (८) विवाह (९) अन्त्येष्टि तथा (१०) उपसंहार। मध्ययुगीन निबन्ध ग्रन्थों तथा पद्धतियों में संस्कार के ऊपर केवल कर्मकाण्डीय दृष्टि से विचार किया गया है। यह ग्रन्थ उनके सामाजिक तथा धार्मिक आधार और मूल्यों का विस्तृत विवेचन और हिन्दू संस्कृति के एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग की आधुनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। छपाई गेटअप आदि आधुनिकतम। मूल्य १५)

प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, वाराणसी-१